जुलाई 2025

धर्म एवं अध्यात्म के तत्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 89 | अंक - 7 | प्रति - ₹ 25 | ₹ 300 वार्षिक

10 ज्ञान से होती है पवित्रता की प्राप्ति
20 मनोनिग्रह ही आत्मविजय है
43 विवेकशून्य स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है
60 हमारा युग निर्माण सत्संकल्प : नवसृजन का शंखनाद

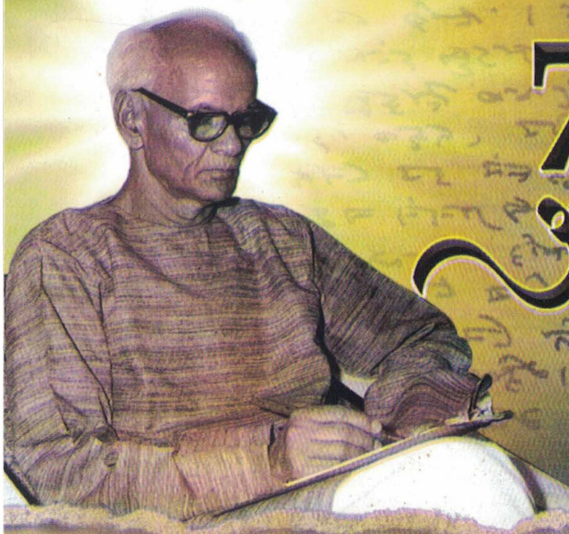

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

जुलाई-1950

जीवन की सफलता का रहस्य

अपने जीवन में सबसे बड़ी और मूल्यवान बात जो मैंने सीखी है वह है—साध्य से अधिक साधना की ओर ध्यान देना। यही सफलता का रहस्य है। हम लोगों में सबसे बड़ा दोष यही है कि हम लोग लक्ष्य की ही ओर ध्यान देते हैं और साधन की, कार्यप्रणाली की, ब्योरे की बातों को भूल जाते हैं। और इसीलिए इसका परिणाम यह होता है कि यदि हम अपने लक्ष्य पर एक बार पहुँच भी गए, यदि हमको एक बार सफलता मिल भी गई तो भी हमारी वह सफलता स्थायी नहीं होती और हम शीघ्र ही फिसल जाते हैं। हमें सबसे पहले यह बात ध्यान में बैठा लेनी चाहिए कि हमारी कार्यप्रणाली की शुद्धता और अशुद्धता पर ही कार्य का फलाफल निर्भर करता है। यदि हमारी प्रणाली ठीक न रही तो फल कभी ठीक नहीं हो सकता। पद्धति पर ध्यान देने से परिणाम आशा और अभिलाषा के अनुरूप ही होगा इसमें तनिक भी संशय नहीं। प्रणाली की विशुद्धता ही फल है।

अतः हमें चाहिए कि अपना सारा ध्यान कर्म और उसकी प्रणाली पर ही रखें, उसकी पूर्ति के प्रलोभन में तनिक भी न फँसें। गीता का भी यही उपदेश है कि हमें निरंतर अपने कर्म में लगे रहना चाहिए, फल की स्पृहा करना उसके पीछे अंधा होना पतन की जड़ है। इसीलिए गीता का कथन है कि सब कर्मों को करते हुए भी उनसे अनासक्त रहें। आसक्ति होना ही बुरा है। संसार में हम कर्म करने के लिए आते हैं। किंतु कर्मफल के लिए हमारे अंदर जो स्पृहा, जो लोभ होता है, वह हमारा सत्यानाश कर देता है। हम नित्य देखते हैं कि मधुमक्षिका फूलों का रस चूसने के लिए आती है, किंतु चलते समय उन फूलों के रस में उसके पर फँस जाते हैं और वह विवश हो जाती है, इसका कारण उसके अंदर मधु के प्रति आसक्ति है। उसी प्रकार हम भी इस विश्व में केवल कर्म करने के लिए आते हैं, किंतु अपनी मूर्खता से उसके फल के प्रति आसक्ति रखने के कारण संसार में ही फँस जाते हैं। फल इसका बड़ा घातक होता है। हमारी स्वतंत्रता छिन जाती है, हम गुलाम हो जाते हैं। प्रकृति से हम सब चीजें प्राप्त करना चाहते हैं, किंतु अंत में प्रकृति हमसे सभी चीजें छीन लेती है और हमको ठुकरा देती है।

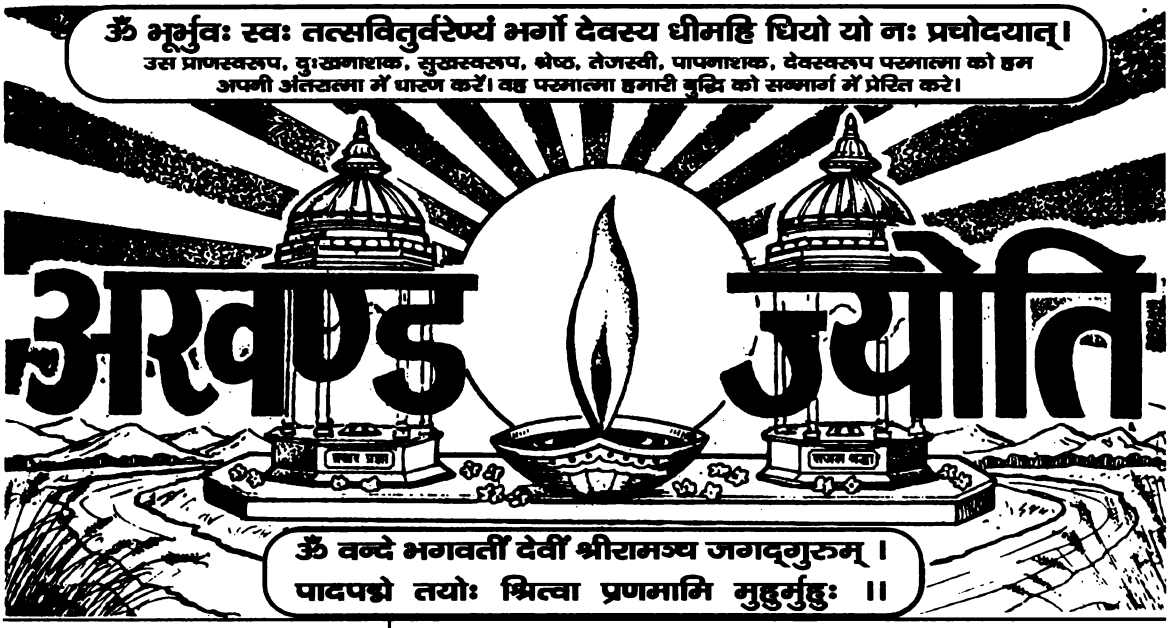

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449 2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036 7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	89
अंक	:	07
जुलाई	:	2025
आषाढ़-श्रावण	:	2082
प्रकाशन तिथि	:	01.06.2025

वार्षिक चंदा

भारत में सामान्य डाक से	:	300/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से	:	540/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)
भारत में सामान्य डाक से : 6000/-
भारत में रजिस्टर्ड डाक से (वार्षिक) : +240/-

ऋषि जीवन - ऋषि साहित्य

(क्रमशः)

ऋषि जीवन-ऋषि साहित्य का सम्मिलन-संयोग इन्हीं दिनों बन पड़ा। हिमालय की गिरि-गुफाओं में युगों से तप-निरत, पुरातन ऋषियों की अध्यात्म चेतना उनमें अवतरित होने से अब वे युगऋषि थे। उनके अस्तित्व में वेदमाता के अवतरण से, उनमें वेदज्ञान-ऋषिज्ञान सहज ही प्रस्फुटित व प्रकाशित था। अब उनके प्रकटन का समय आ गया था। ऋषियों के आदेश व वेदमाता के अनुग्रह से वे अपने ऋषि जीवन को ऋषि साहित्य में प्रकट करने के लिए तत्पर थे।

वेद और वेदभाष्य पहले भी थे। इनमें से कई प्राचीन होने के कारण वर्तमान समझ के अनुकूल न थे। अर्वाचीन समय के अँगरेज भाष्यकारों ने इनके अर्थ में अनर्थ समेट दिया था। आवश्यकता युगानुकूल सरल-सुगम भाष्य की थी, जो लोकभाषा में लोकजीवन को वेदज्ञान दे सके। इस ओर उनकी आध्यात्मिक चेतना की समस्त आध्यात्मिक अनुभूतियाँ उन्मुख हुईं। वेदमाता ने स्वयं उनके सम्मुख वेद-रहस्य खोले। ऋषियों ने स्वयं साकार होकर उनमें वेदमंत्रों की अनुभूतियों को प्रकाशित किया।

इस समाधि ज्ञान से चारों वेदों का वेदज्ञान लोकभाषा हिंदी में प्रकट हुआ और वे स्वयं इस दिव्य वेद अनुभव से वेदमूर्ति हो गए। फिर तो इसी शृंखला में 108 उपनिषद्, 18 पुराण, 18 उपपुराण, स्मृतियाँ, दर्शन सबके-सब देवभाषा से लोकभाषा हिंदी में प्रकट व प्रकाशित होते गए। उन्होंने अपने ऋषि जीवन के ऋषिज्ञान को ऋषि साहित्य के भाष्य के प्रकाशन में प्रकट किया। अब उनका तपोनिरत ऋषि जीवन वेदमूर्ति, तपोनिष्ठ युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। ❑

विषय सूची

- आवरण—1 — 1
- आवरण—2 — 2
- ऋषि जीवन-ऋषि साहित्य — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  रासायनिक कृषि
  आज की विकराल समस्या — 5
- गायत्री-उपासना से ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति — 7
- ज्ञान से होती है पवित्रता की प्राप्ति — 10
- **पर्व विशेष—गुरु पूर्णिमा**
  ऐसे बनें सच्चे गुरुभक्त — 12
- धर्मोपदेश से मिलती है नई जीवन-दृष्टि — 15
- श्रीरामकृष्ण परमहंस की तीर्थयात्रा — 17
- मनोनिग्रह ही आत्मविजय है — 20
- केसर का रोचक संसार — 22
- सकारात्मक विचार — 24
- स्मृति की सुवास — 26
- पत्रकारिता में गंभीर पहल का समय — 28
- स्मार्टफोन का दुरुपयोग एवं उसका समाधान — 31
- भावनात्मक लगाव का रहस्य — 33
- बाल निर्माण का पावन दायित्व — 35
- ऋषितंत्र से साक्षात्कार — 37
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—195**
  वृद्धावस्था पर यौगिक प्रभाव — 40
- **युगगीता—302**
  विवेकशून्य स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है — 43
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  सौभाग्यशाली वसंत — 45
- **विश्वविद्यालय परिसर से—241**
  रामकथा में तीर्थकथा — 52
- **साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला**
  समाज की बदलती दशा — 57
- **अपनों से अपनी बात**
  हमारा युग निर्माण सत्संकल्प
  नवसृजन का शंखनाद — 60
- गुरु कार्य में रहे समर्पित (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया। चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

जुलाई-अगस्त, 2025 के पर्व-त्योहार

रविवार	06 जुलाई	देवशयनी एकादशी	मंगलवार	12 अगस्त	बहुला चौथ
गुरुवार	10 जुलाई	गुरु पूर्णिमा/ पूर्णिमा व्रत	शुक्रवार	15 अगस्त	स्वतंत्रता दिवस/ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
सोमवार	21 जुलाई	कामिका एकादशी			
गुरुवार	24 जुलाई	हरियाली अमावस्या	मंगलवार	19 अगस्त	अजा एकादशी
मंगलवार	29 जुलाई	नाग पंचमी	शनिवार	23 अगस्त	कुशाग्रहणी अमावस्या
गुरुवार	31 जुलाई	तुलसी जयंती	मंगलवार	26 अगस्त	हरितालिका व्रत
मंगलवार	05 अगस्त	पवित्रा एकादशी	बुधवार	27 अगस्त	गणेश चतुर्थी
शनिवार	09 अगस्त	पूर्णिमा/ रक्षाबंधन	गुरुवार	28 अगस्त	ऋषि पंचमी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

रासायनिक कृषि : आज की विकराल समस्या

आज खेती विषाक्त हो चली है। जो फल-सब्जी, अन्न-शाक एवं दुग्ध उत्पाद हम ग्रहण कर रहे हैं, इनमें रसायनयुक्त विष की मात्रा बढ़ रही है। आश्चर्य नहीं कि ऐसे आहार के साथ रोगों की भी बाढ़-सी आ चली है—जो शरीर में तमाम तरह की विकृतियों के साथ कैंसर जैसे गंभीर रोगों तक का कारण बन रहे हैं।

प्रकृति एवं पर्यावरण के साथ जिस तरह से मानवीय छेड़-छाड़ बढ़ी है एवं वातावरण को दूषित किया जा रहा है, उससे प्रकृति का हर घटक विषाक्त हो रहा है। परिणामस्वरूप खाद्य पदार्थों में इसके प्रभाव से स्वास्थ्य संकट की स्थिति विकराल होती जा रही है—इस सबके बीच समूची मानवता किस ओर जा रही है, यह गंभीर चिंता का विषय है। ऐसा लगता है कि इनसान अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा है और इस आत्मघात की ओर बढ़ते कदमों को थामने व इसकी दिशा पलटने की आवश्यकता है।

राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद बढ़ती आबादी की खाद्य आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से रासायनिक खेती प्रारंभ हुई। पश्चिम से कृषि विज्ञान का अध्ययन कर आए हमारे विशेषज्ञों ने आधुनिक, मशीनीकृत खेती के प्रयोगों को देश में आजमाया। 1960 के दशक में इसके साथ आई हरित क्रांति ने खाद्यान्न उत्पादन में एक नई क्रांति का सूत्रपात किया, जिसमें रासायनिक उर्वरकों, कीटनाशकों और सिंचाई में भारी निवेश के साथ उच्च फसल उत्पादन का लक्ष्य पूरा किया गया।

इन सकारात्मक प्रभावों के साथ निश्चित रूप में हरित क्रांति ने तात्कालिक खाद्य-संकट का समाधान किया और इनको देखते हुए किसानों ने इस प्रयोग को हाथोंहाथ लिया, लेकिन साथ ही हरित क्रांति ने भविष्य के लिए एक हानिकारक पद्धति का भी सूत्रपात किया।

हरित क्रांति के जनक एम० एस० स्वामीनाथन ने यूरिया जैसे रासायनिक उर्वरकों के सीमित उपयोग की हिदायत दी थी, लेकिन कुछ लोभ में आकर, तो कुछ अज्ञानतावश किसान भाइयों ने आवश्यकता से अधिक इनका उपयोग प्रारंभ किया। इनके साथ कीटनाशकों के धड़ल्ले के साथ उपयोग ने स्थिति को और विकराल कर दिया। परिणामस्वरूप इन रसायनों से जहाँ प्रारंभ में उत्पादकता बढ़ी तो वहीं इनके बढ़ते उपयोग के साथ भूमि की उत्पादकता का क्षरण होता गया और भूमि अपनी नैसर्गिक उर्वरता के साथ महत्त्वपूर्ण पौष्टिक तत्त्वों एवं खनिज पदार्थों से वंचित होती गई।

भूमि में अम्लीयता बढ़ने के साथ जैविक पदार्थ घटने लग गए। रासायनिक खेती ने भूमि की सारी उर्वरा शक्ति को जैसे सोख लिया और इन क्षेत्रों की खेती बंजर हो चली। कीट-पतंगों से लेकर पक्षियों एवं अन्य जीव-जंतुओं पर इसके प्रतिकूल प्रभाव पड़ने लगे। मित्र जीव, लाभकारी बैक्टीरिया व अन्य सूक्ष्मजीव नष्ट होते गए तथा हानिकारक कीट और मजबूत होते गए। इसी के साथ रासायनिक खेती एवं कीटनाशकों का प्रयोग बढ़ता गया। इससे जैवविविधता प्रभावित होने लगी। रसायनों से विषाक्त जल भूमिगत जल से मिलने पर जल प्रदूषण का कारण बनने लगा। यही जल नदियों में मिलने पर व्यापक स्तर पर स्वास्थ्य संकट का कारण बनता गया।

इनके कारण नाना प्रकार के रोग पनपने लगे, यहाँ तक कि कैंसर के मामले बढ़ते गए। हरित क्रांति के अगुआ पंजाब प्रांत में तो कैंसर के केस बढ़ने के कारण कैंसर ट्रेन तक चल पड़ी। रासायनिक खेती वाले शेष क्षेत्रों में भी तेजी से स्थिति बिगड़ती गई और आज स्थिति चिंताजनक है। खाद्यान्नों में जहर घुल रहा है और हम विषाक्त आहार लेने के लिए अभिशप्त हैं।

जल से लेकर मिट्टी, हवा सब प्रदूषित हो रहे हैं। अन्न, शाक, फल, घास, दुग्ध सबमें इस प्रदूषण का अंश मिला हुआ है। माँ के दूध में भी इसका अंश होने से यह नवजात शिशु के स्वास्थ्य के साथ भी खिलवाड़ कर रहा है। यहाँ तक कि गर्भस्थ शिशु तक इसके खतरे की जद में हैं। परिणामस्वरूप ग़र्भ में ही विकृतियाँ प्रारंभ हो चली हैं। बचपन में ही ऐसे यकृत व हृदय रोग हो रहे हैं, जो पचास वर्ष पहले सुनने में भी नहीं आते थे। गाँव-देहात तक में इनकी संख्या बढ़ रही है, फिर रासायनिक खेती अधिक महँगी भी पड़ती है।

प्राकृतिक एवं जैविक खादों की तुलना में रासायनिक खाद व कीटनाशक अधिक महँगे पड़ते हैं; क्योंकि भारत में 86% किसान लघु एवं सीमांत श्रेणी के हैं। रासायनिक कृषि उनको ऋणग्रस्तता की ओर धकेलती है। सरकारप्रदत्त भारी उर्वरक सब्सिडी का लाभ लघु-कृषकों को नहीं मिल पाता। बीच में महाराष्ट्र में हजारों किसानों की आत्महत्या के चिंताजनक मामले आए थे, उनमें पाया गया था कि ये घटनाएँ वहाँ अधिक हुईं, जहाँ रासायनिक उर्वरकों का उपयोग अधिक किया गया था।

रासायनिक कृषि से जुड़ी इस विकट स्थिति के समाधान के लिए हमें जैविक खेती से लेकर प्राकृतिक खेती के विकल्प को अपनाना होगा। इसके कई लाभ हैं, इनसे भूमि की उपजाऊ क्षमता बढ़ने के साथ फसलों की उत्पादकता बढ़ती है, भूमि की गुणवत्ता में सुधार आता है और भूमि की जलधारण क्षमता बढ़ती है तथा भूमि से जल का वाष्पीकरण कम होता है। पर्यावरण की दृष्टि से भी इसके कई लाभ हैं जैसे भूमि के जलस्तर में वृद्धि होती है। मिट्टी, खाद्य पदार्थ और भूमि में जल के माध्यम से होने वाले प्रदूषण में कमी आती है। फसल उत्पादन में लागत कम तथा आय अधिक होती है और जैविक व प्राकृतिक उत्पादों के लिए उपभोक्ता भी आज किसानों को मुँहमाँगा दाम देने के लिए तैयार हैं। अत: किसानों को अधिक लाभ सुनिश्चित है।

इस पृष्ठभूमि में किसान भाइयों की जिम्मेदारी बढ़ जाती है और यह एक अवसर भी है कि देश व समाज की स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में कुछ सार्थक योगदान दिया जाए। रासायनिक खेती के इस दौर में उन्हें जैविक-प्राकृतिक खेती की साहसिक पहल करनी होगी। सरकार से भी किसानों को इस दिशा में विशेष सहयोग-समर्थन दिए जाने की अपेक्षा की जाती है।

सिक्किम में जैविक कृषि के सफल प्रयोग हो चुके हैं, देश के कई भागों में इस दिशा में सफल प्रयास चल रहे हैं। इन सफल प्रयोगों को आम किसानों तक पहुँचाने की आवश्यकता है। देश का हर नागरिक चाहे तो अपने स्तर पर भी इस दिशा में कुछ सार्थक पहल करके अपना योगदान दे सकता है।

छोटे-बड़े शहरों में जहाँ जैविक सब्जियों व अन्न-शाक की सुविधाएँ उपलब्ध न हों, वहाँ हर जागरूक नागरिक अपने घर, आँगन व छतों में ही दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बागवानी के माध्यम से ऐसे छोटे-बड़े प्रयोग कर सकता है और सभी मिलकर जैविक-प्राकृतिक कृषि को व्यापक स्तर पर एक आंदोलन का स्वरूप देते हुए स्वस्थ-नीरोग जीवन को सुनिश्चित करने वाली आहार क्रांति का सूत्रपात कर सकते हैं। ❑

गायत्री-उपासना से ब्रह्मवर्चस की प्राप्ति

केनोपनिषद् में परब्रह्म परमेश्वर से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि "हे परमात्मन्! मेरे सारे अंग, वाणी, नेत्र, श्रोत्र आदि सभी कर्मेंद्रियाँ और ज्ञानेंद्रियाँ, प्राण समूह, शारीरिक और मानसिक शक्ति तथा ओज—सब पुष्टि एवं वृद्धि को प्राप्त हों। उपनिषदों में सर्वरूप ब्रह्म का जो स्वरूप वर्णित है, उसे मैं कभी अस्वीकार न करूँ और वह ब्रह्म भी मेरा कभी परित्याग न करें।

"परब्रह्म मुझे सदा अपनाए रखें। मेरे साथ ब्रह्म का और ब्रह्म के साथ मेरा नित्य संबंध बना रहे। उपनिषदों में वर्णित धर्म व उपनिषदों के एकमात्र लक्ष्य परब्रह्म मुझ साधक में सदा प्रकाशित रहें, मुझमें नित्य-निरंतर बने रहें और मेरे त्रिविधि तापों की निवृत्ति हो।"

केनोपनिषद् में वर्णित उपर्युक्त प्रार्थना के माध्यम से दरअसल यह स्पष्ट किया गया है कि परब्रह्म परमेश्वर की शक्ति ही सर्वोपरि है। परब्रह्म को जान लेने पर कुछ और जानना शेष नहीं रह जाता। वे ब्रह्म सर्वशक्तिशाली हैं। उस ब्रह्म की शक्ति को पाकर ही साधक शक्तिसंपन्न हो सकता है अर्थात वह मनोबल, आत्मबल, ब्रह्मबल आदि प्राप्त करता है।

ब्रह्म का ज्ञान पाकर ही साधक ब्रह्मज्ञानी हो सकता है। उस ब्रह्म से जुड़कर ही, उस ब्रह्म से संबंध बनाकर और उसे जानकर ही साधक ब्रह्मानंद को प्राप्त कर सकता है। वह इस लोक में जीवनमुक्त होकर आनंदपूर्वक रहते हुए इस लोक से प्रयाण करने के उपरांत अमृतस्वरूप, विदेह होकर जन्म-मृत्यु से सदा-सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता है।

वह ब्रह्म की शक्ति से संपन्न होकर अर्थात ब्रह्मवर्चस को प्राप्त करके ही इस लोक में जीवनपर्यंत सुख और शांति पाता है, ब्रह्मसुख पाता है तथा जीवन में सर्वत्र सफल होता है और इस जीवन के उपरांत विदेह होकर ब्रह्म में लीन होकर उनसे एकरूप हो जाता है और जन्म-मरण के चक्र से, आवागमन से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता है, अस्तु ब्रह्म से संबंध बनाना, हर जीवात्मा के लिए आवश्यक है।

ब्रह्म से संबंध जोड़ने की क्रिया, प्रक्रिया को ही हम ब्रह्म की उपासना अथवा भगवद्उपासना कहते हैं। चूँकि सक्रिय व सगुण रूप में गायत्री ब्रह्म ही हैं और निर्गुण, निराकार और अक्रिय रूप में ब्रह्म भी गायत्री ही हैं, इसलिए गायत्री-उपासना साक्षात् ब्रह्म की ही उपासना है; क्योंकि गायत्री और ब्रह्म दोनों एक ही हैं।

साधक को ब्रह्म से जोड़ने, उपासकों को उपासना से जोड़ने, आराधक को आराध्य से जोड़ने के कारण गायत्री साधना भी हैं और साध्य भी; क्योंकि गायत्री मंत्र जप, गायत्री अनुष्ठान, गायत्री पुरश्चरण, गायत्री ध्यान के द्वारा साधक जिस उपासक के प्रेम में, ध्यान में डूबता है और उनका साक्षात्कार करता है, वह भी गायत्री रूप में ब्रह्म ही है। इसलिए तो गायत्री को ब्रह्मरूपा कहा गया है। गायत्री निर्गुण, निराकार ब्रह्म का ही सगुण, साकार और सक्रिय रूप है, अस्तु ब्रह्म से जुड़ने, ब्रह्म से तादात्म्य स्थापित करने का सर्वोत्तम साधन है—गायत्री-उपासना। बृ०यो० याज्ञ०-2.66 में कहा गया है—

भूर्भुवः स्वरिति चैव चतुर्विंशाक्षरा तथा।
गायत्री चतुरो वेदा ओंकारः सर्वमेव तु॥

अर्थात '**भूर्भुवः स्वः**' यह तीन महाव्याहृतियाँ, '**तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्**' यह चौबीस अक्षर वाली गायत्री तथा चारों वेद निस्संदेह ओंकार (ब्रह्म) स्वरूप हैं। वहीं गायत्री के सिद्ध साधक ऋषि विश्वामित्र कहते हैं—

देवस्य सवितुर्यस्य धियो यो नः प्रचोदयात्।
भर्गो वरेण्यं तद्ब्रह्म धीमहित्यथ उच्यते॥

अर्थात गायत्री मंत्रजप के द्वारा उस दिव्य तेजस्वी, ब्रह्म का हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करता है। वहीं शतपथ ब्राह्मण 8.5.3.7 में कहा गया है—

ब्रह्म गायत्रीति-ब्रह्म वै गायत्री।

अर्थात ब्रह्म गायत्री हैं और गायत्री ही ब्रह्म हैं। कूर्म पुराण उ० विभा० अ० 14.57 में गायत्री और ब्रह्म की एकता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है—

ओंकारस्तत्परं ब्रह्म सावित्री स्यात्तदक्षरम्।

अर्थात ओंकार परब्रह्मस्वरूप हैं और गायत्री भी अविनाशी ब्रह्म हैं।

इसी सत्य को प्रकाशित करते हुए गायत्री महाविद्या के मर्मज्ञ व गायत्री-साधना, उपासना के द्वारा ब्रह्म साक्षात्कार को प्राप्त हुए ऋषिवर परमपूज्य गुरुदेव ने कहा है कि—'गायत्री कोई स्वतंत्र देवी-देवता नहीं है, बल्कि गायत्री निर्गुण-निराकार ब्रह्म का ही क्रिया भाग है। ईश्वरभक्ति, ईश्वरोपासना, ब्रह्मसाधना, ब्रह्मसाक्षात्कार आदि पुरुषवाची शब्दों का जो तात्पर्य और उद्देश्य है वही गायत्री-उपासना आदि स्त्री-वाची शब्दों का मंतव्य है।'

गायत्री-उपासना वस्तुतः ईश्वर-उपासना का एक अत्यंत सरल और शीघ्र सफल होने वाला मार्ग है। इस मार्ग पर चलने वाले लोग एक सुरम्य उद्यान से होते हुए जीवन के चरम लक्ष्य 'ईश्वरप्राप्ति' तक पहुँचते हैं। ब्रह्म और गायत्री में केवल शब्दों का अंतर है, वैसे दोनों एक ही हैं।

निस्संदेह गायत्री से श्रेष्ठ कोई मंत्र नहीं—जो गायत्री को जान लेता है, वह समस्त विद्याओं का वेत्ता और श्रोत्रिय हो जाता है। गायत्री को जान लेने पर कुछ और जानना शेष नहीं रह जाता, वह स्वयं गायत्रीरूप तेजस्वी आत्मा बन जाता है, अस्तु भौतिक लालसाओं से पीड़ित प्राणी के लिए भी और ब्रह्मप्राप्ति और आत्मकल्याण की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु के लिए भी एकमात्र आश्रय गायत्री ही हैं। गायत्री-उपासना हर दृष्टि से सरल व सर्वोत्तम है।

गायत्री के द्वारा ब्रह्म की उपासना कैसे करें? इस प्रश्न के उत्तर में शास्त्र कहते हैं कि प्रणव, व्याहृति और गायत्री—इन तीनों से परम ब्रह्म की उपासना करनी चाहिए। इस प्रकार उपासना करने से हृदय स्थित गायत्रीस्वरूप ब्रह्म की प्राप्ति होती है।

ऋषिवर विश्वामित्र कहते हैं कि प्रकाशसहित सत्यानंदस्वरूप ब्रह्म को हृदय में और सूर्यमंडल में ध्यान करता हुआ, कामनारहित हो गायत्री मंत्र को यदि जपे तो अविलंब संसार के आवागमन से छूट जाता है। गायत्री तत्त्व श्लोक—1 के अनुसार गायत्री से (गायत्री जप, गायत्री-उपासना से) सच्चिदानंद लक्षण वाला ब्रह्म प्रकाशित होता है अर्थात-ज्ञात होता है।

इन प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म ही गायत्री हैं और उनकी उपासना ब्रह्मप्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग है। ब्रह्मसुख की प्राप्ति करनी हो अथवा भौतिक सुख की प्राप्ति करनी हो—दोनों ही दृष्टि से गायत्री-उपासना सरल व सर्वोत्तम मार्ग है। इसलिए तो अत्रि मुनि कहते हैं कि 'गायत्री आत्मा का परम शोधन करने वाली है।

उसके प्रताप से कठिन दोष और दुर्गुणों का परिमार्जन हो जाता है।' जो मनुष्य गायत्री तत्त्व को भली प्रकार समझ लेता है, उसके लिए इस संसार में कोई सुख शेष नहीं रह जाता।

वहीं महर्षि वेदव्यास जी कहते हैं कि 'जैसे गंगा शरीर के पापों को निर्मल करती है, वैसे ही गायत्रीरूपी ब्रह्मगंगा से आत्मा पवित्र होती है। जो अन्य उपासनाएँ करता है, वह पकवान छोड़कर भिक्षा माँगने वाले के समान मूर्ख है।' गायत्री-उपासना की महत्ता को लेकर भरद्वाज ऋषि कहते हैं कि 'ब्रह्मा आदि देवता भी गायत्री का जप करते हैं। गायत्री ब्रह्म साक्षात्कार कराने वाली हैं।'

ऋषिवर वसिष्ठ कहते हैं कि 'मंदमति, कुमार्गगामी और अस्थिरमति भी गायत्री जप के प्रभाव से उच्च पद को प्राप्त करते हैं, फिर सद्गति होना तो निश्चित है ही। जो पवित्रता और स्थिरतापूर्वक गायत्री की उपासना करते हैं, वे आत्मलाभ प्राप्त करते हैं।'

इस प्रकार गायत्री जप, गायत्री-उपासना की महत्ता को लेकर सभी ऋषियों के मत लगभग एक जैसे ही हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वे ब्रह्म की प्राप्ति के लिए गायत्री जप, गायत्री-उपासना को सरल व सर्वोत्तम मानते थे और अपनी उपासना में उसे सर्वोच्च स्थान देते थे।

अथर्ववेद (19-71-1) में तो महाशक्ति गायत्री की स्तुति करते हुए उसे आयु, प्राण, शक्ति, कीर्ति, धन और ब्रह्मतेज प्रदान करने वाली महाशक्ति कहा गया है। अस्तु हर दृष्टि से गायत्री का जप, गायत्री की उपासना सबके लिए सरल, श्रेष्ठ व उपयोगी है। ❑

नगरसेठ गोपाल्लव अथाह धनराशि का स्वामी था। विपुल धन-वैभव के होते हुए भी उसके मन में तनिक भी शांति न थी। कई रातें बीत जातीं, पर वह विस्तर पर करवटें ही बदलता रहता और उसका मन उद्विग्न-बेचैन बना रहता। एक दिन वह अपने विस्तर पर लेटा हुआ था कि उसे एक मधुर आवाज सुनाई पड़ी, कोई व्यक्ति बाहर ईश्वर का भजन गा रहा था। उस संगीत को सुन गोपाल्लव का मन ऐसा शांत हुआ कि उसे तुरंत निद्रा आ गई।

अगले दिन उसने उस व्यक्ति को बुलवाया, जो भजन गा रहा था। वह व्यक्ति नगर का मोची था। उसने उसे स्वर्णमुद्रा दी, पर स्वर्णमुद्रा पाने के बाद उस व्यक्ति का भजन कई रातों तक नहीं सुनाई पड़ा। गोपाल्लव ने उसे बुलवाया तो पता चला कि उसने जीवन में पहली बार स्वर्णमुद्रा देखी थी और उसे पाने के बाद वह उसकी रक्षा में ऐसा निरत हुआ कि उसकी स्वयं की नींद चली गई।

यह सुनकर गोपाल्लव को भान हुआ कि स्वार्थ ही सारी समस्याओं का मूल है। उसने अपनी धन-संपत्ति को परोपकार के कार्यों में उपयोग करने का निश्चय किया। परमार्थ का पथ अपनाते ही उसके मन में शांति ने स्थान बना लिया।

ज्ञान से होती है पवित्रता की प्राप्ति

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥

—4.38 (गीता)

ज्ञान के समान इस धरती पर और कोई पवित्र करने वाला नहीं और उस ज्ञान को योगी पुरुष योग के संसिद्धि काल में, स्वयं ही पा लेता है अर्थात जिसका योग सिद्ध हो गया, इंद्रियाँ भली भाँति शांत हो गई हों एवं जीवन से कष्टों की, अदूरदर्शितापूर्ण मान्यताओं की निवृत्ति हो गई हो, तथा जीवन सौंदर्य से, आनंद से एवं परिपूर्णता के उल्लास से पूरित हो गया हो, उसी समदर्शी, एकांत एवं ब्रह्मपरायण योगी के लिए संसार कोई शोध की वस्तु नहीं, बल्कि आत्मा की प्राप्ति का साधन बन जाता है।

ज्ञान ही हमें पवित्र करता है और आपके पूजा-उपचार, आपकी कर्मकांड की विधियाँ एवं आपके युक्तिसंगत उपाय भले ही बहिर्दृष्टि से उपयुक्त लगते हों, परंतु उनमें आत्मा का तत्त्व विद्यमान नहीं और इसीलिए दुनिया परेशान है कि उसने ज्ञान तो बहुत अर्जित कर लिया, साधन भी बहुत तैयार कर लिए, पर अपनी आत्मिक शांति के लिए वह अभी भी लालायित है।

इसका कारण है चेतना का अधूरा विकास, जो कि ज्ञान से ही संभव है और ज्ञान वो, जो पवित्र करे, समदर्शी बनाए, भीतर के कुहासों को मिटाए, एक नवीन दृष्टि देकर जीवन को सुखपूर्वक जीने की विधा समझाए। हम समझ सकते हैं ज्ञान कितना महान है और हम उसे पुस्तकों में, साधारण वाद-व्यवहार में एवं बिना किसी ठोस निष्कर्ष में पहुँचे, कुछ भी मान बैठते हैं।

चेतना की आवश्यकता है पवित्र होना और मनुष्य उसे निरंतर उन्हीं कुचक्रों में फँसाए रखता है, जिनसे किसी प्रकार की गुणात्मक वृद्धि तो हो, पर मन शांत न होने पाए, चेतना दूषित-की-दूषित ही बनी रहे। फिर कहा गया है कि योगी पुरुष इस ज्ञान को योग के संसिद्धि काल में, स्वयं ही अपने भीतर, अपनी चेतना में प्राप्त कर लेता है।

यह कितना अद्‌भुत उदाहरण है कि पहले योग करना पड़ता है, फिर यह ज्ञान प्राप्त होता है। बड़ी अद्‌भुत विशेषता है इस ज्ञान की, पर कौन-सा योग, घुटने टेकने वाला या आत्मा को जाग्रत कर देने वाला। यहीं पर योग की वास्तविक परिभाषा भी निरूपित होती है कि योग वह, जो आत्मा की प्राप्ति करा दे।

योग माने चिंतन की बारीकी से अपने भीतर प्रवेश करके, स्वयं को जान लेना और स्वयं के मुक्तिस्वरूप इस ज्ञान को प्राप्त कर लेना। कौन-सा ज्ञान ? चेतना को बंधनमुक्त करने वाला ज्ञान, इसीलिए वह पवित्र है, इसीलिए उसकी आवश्यकता मनुष्य को हर क्षण रहती है, उसकी प्रकृति में कुछ ऐसा है, जो बिना ज्ञान के रह ही नहीं सकता, अब मनुष्य उस ज्ञान का उपहास उड़ाए और कहे कि हमें तो ज्ञान प्राप्त हो गया, हम तो निश्चिंत हैं, हमारे मन को इस अध्यात्म के पचड़े में क्यों फँसाते हो ? अरे ! मन तुम्हारा कब अपना था, देख नहीं रहे कि बचपन से अब तक कैसे रंग बदलता है, तरह-तरह के सोच-विचार कर आपको अपने चंगुल में फँसाए रखता है और आप कहते हैं कि आप मुक्त हैं।

भला आप मुक्त कैसे हो जाएँगे, झूठा ज्ञान प्राप्त करके, और कौन-सी सिद्धि या मुक्ति मिल जानी है इस तरह संसार को अपना आश्रय बना के। आपको चाहिए वास्तविक ज्ञान, जो चेतना की आवश्यकता की पूर्ति कर सके, भीतर से तृप्त एवं बाहर से निहाल कर सके, स्वचिंतन को विकसित कर सके और दुनिया के सामने पूरी निर्भयता से खड़े होने की सामर्थ्य आपको प्रदान कर सके। ज्ञान वह—जो पवित्र बनाए, इतना शक्तिशाली कर दे कि फिर आप संसार में कहीं भी रहें, ज्ञान आपके चिंतन, चरित्र और व्यवहार में पूर्ण रूप से प्रदर्शित हो।

ज्ञान की महिमा ही इतनी है कि उससे स्वयं को परिवर्तित किए बिना आप रह ही नहीं सकते हैं और ज्ञान ही हमें पवित्र करता है। योग है जीवन को पूर्णरूपेण भगंवत्सत्ता के हाथ में सौंप देना। तब इसमें न निवृत्ति का अहंकार ही रह जाता है, न प्राप्ति का संतोष ही।

पूर्ण मन से मिलन, ऐसे कि जैसे राम की अयोध्या नगरी में प्रवेश कर गए हों और माँग रहे हों राम की उपस्थिति और राम हर जगह दिखाई दें, जैसे पूरा संसार ही राममय हो गया हो। यही योग है और इसके बाद हर कर्म-पूजा हो जाता है। ऐसे कर्म के आधार पर ही अंत:करण में पवित्र करने वाला ज्ञान जन्म लेता है।

अंतरंग का परिष्कार करने वाला ज्ञान ही आत्मज्ञान है। आत्मज्ञान से ही दुनिया की बड़े-से-बड़ी जंग जीती जा सकती है, बस, अपने भीतर पवित्रता, उद्देश्यनिष्ठा एवं समर्पण का भाव होना चाहिए। तभी तो कहा गया है कि—'**न हि ज्ञानेन सदृशं**' और '**तत्स्वयं योगसंसिद्धः**', दोनों बातें एक ही ओर इशारा करती हैं कि ज्ञानपूर्वक, धैर्य एवं लगन से अपने लक्ष्य सिद्धि के मार्ग पर बढ़ते जाना चाहिए—वही सर्वोत्तम मार्ग है। ❑

आचार्य कांभोज की पुत्री निश्चला विदुषी एवं सुसंस्कारित थी। उसके रूप की चर्चा दूर-दूर तक थी। राज्य का राजकुमार भूरिश्रवा उसका हाथ माँगने पहुँचा।

राजकुमार के प्रणय प्रस्ताव पर निश्चला ने उत्तर दिया—''राजकुमार! मैं परिश्रम से उपार्जित धन से जीवन व्यतीत करने में विश्वास रखती हूँ। प्रजा से लिया गया धन् राजकोश में रहे, पर सादा जीवन व्यतीत करें तभी मैं आपकी जीवनसंगिनी बन पाऊँगी।''

भूरिश्रवा भी धर्मनिष्ठ राजकुमार था। उसने निश्चला का यह प्रस्ताव तुरंत स्वीकार कर लिया। दोनों ने राजमहल का त्याग कर झोंपड़ी में रहना अंगीकार किया।

राजकुमार राजकार्य को एक देवप्रदत्त दायित्व की तरह निभाते और दोनों पति-पत्नी स्वअर्जित धन से घर का कार्य चलाते। ऐसा जीवन जीने से दोनों की कीर्ति इतनी बढ़ी कि वे आज भी याद किए जाते हैं।

पर्व विशेष-गुरु पूर्णिमा

ऐसे बनें सच्चे गुरुभक्त

महात्मा बुद्ध का अंतिम दिन था। उनका शिष्य आनंद रोने लगा और बोला—"प्रभु! आप तो जा रहे हैं, मेरा क्या होगा?"

बुद्ध ने कहा—"आनंद! ऐसा मत कहो! मुझसे पहले कितने ही बुद्ध हो गए और मेरे बाद अनेकों होंगे। यह सिलसिला कभी समाप्त नहीं होगा। यदि तू सीखने में कुशल है, तो किसी से भी सीख लेना। तू चालीस वर्ष तक मेरे साथ रहा और तू कहता है कि मुझे ज्ञान नहीं हुआ। मैं इस संसार को छोड़कर जा रहा हूँ, उस दिन तू कह रहा है मुझे ज्ञान नहीं हुआ और अब मेरा क्या होगा? तू समझता था कि गुरु मिल गए, सब कुछ मिल गया, पर मिलना ही पर्याप्त नहीं, तुझे भी बदलने की जरूरत थी, बनने की जरूरत थी। संभव है मेरे न रहने पर तू बुद्धत्व को प्राप्त हो।" इतना कहकर बुद्ध ने अंतिम साँस ली।

कहते हैं कि बुद्ध के उपदेशों, बुद्ध के द्वारा दिए गए ज्ञान का आनंद ने अपने जीवन में अभ्यास तीव्र कर दिया और फलस्वरूप बुद्ध के जाने के बाद आनंद को परम ज्ञान उपलब्ध हो सका। निश्चित ही हमारी आत्मिक, आध्यात्मिक प्रगति में गुरु की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है, पर आत्मिक-आध्यात्मिक प्रगति के लिए गुरु का मिल जाना ही क्या पर्याप्त है? यह यक्षप्रश्न हम सबसे इस प्रश्न का उतर चाहता है।

मैं वर्षों तक ब्रह्मज्ञानी गुरु के सान्निध्य में रहा पर फिर भी अब तक मुझे आत्मबोध क्यों न हुआ? मेरी आत्मिक प्रगति भला क्यों न हुई? मैंने तो सुना था कि ब्रह्मज्ञानी गुरु के दर्शन मात्र से सब कुछ प्राप्त हो जाता है, पर मेरे साथ भला ऐसा क्यों हुआ कि ब्रह्मज्ञानी गुरु से दीक्षा पाकर भी, ज्ञान पाकर भी मुझे वर्षों बाद भी कुछ भी प्राप्त न हो सका? आदि प्रश्न हमारे मन में भी उठते हैं या उठ सकते हैं।

वस्तुतः हमारी आत्मिक, आध्यात्मिक प्रगति में गुरु की भूमिका निस्संदेह महत्त्वपूर्ण होती है। किसी ब्रह्मज्ञानी गुरु का सान्निध्य प्राप्त होना, ज्ञान-उपदेश प्राप्त होना किसी वरदान से कम नहीं। ये सारी बातें सत्य हैं पर गुरु का सान्निध्य शिष्य को तभी निहाल कर पाता है जब शिष्य में गुरु के सान्निध्य को आत्मसात् करने की दृष्टि होती है।

गुरु द्रोण जैसे समर्थ गुरु का सान्निध्य कौरवों और पांडवों को समान रूप से प्राप्त था और दोनों को उन्होंने एक ही तरह के उपदेश दिए थे, पर समर्थ गुरु का सान्निध्य पाकर भी दुर्योधन-दुःशासन आदि वह प्राप्त नहीं कर सके जो युधिष्ठिर, अर्जुन आदि पांडव प्राप्त कर सके।

जब एक बार गुरु द्रोण ने गृहकार्य के रूप में **'सत्यं वद'** को याद करके सभी शिष्यों को लाने को कहा तो दुर्योधन ने तो अगले ही दिन उसे रट कर गुरु द्रोण को सुना दिया, पर युधिष्ठिर उस दिन नहीं सुना सके। उधर युधिष्ठिर 'सत्यं वद' को रटने के बजाय जीवन में सत्य को उतारने व जीने में लग गए। महीनों के अभ्यास के बाद जब जीवन में सत्य बोलने का अभ्यास हो गया तब युधिष्ठिर ने गुरुवर से कहा—"गुरुदेव! आज मैंने आपके द्वारा दिए गए पाठ को कंठस्थ कर लिया है; क्योंकि अब मुझे सत्य बोलने का अभ्यास हो गया है।"

गुरु द्रोण ने कहा—"वत्स! तुमने मेरे उपदेश का अक्षरशः पालन किया।" दरअसल गुरु के ज्ञान को, उपदेश को सुन लेना, लिख लेना और रट लेना ही पर्याप्त नहीं, बल्कि उसे जीवन में उतारना, जीना आवश्यक है। रोटी-रोटी, सेब-सेब कहने, चिल्लाने, लिखने या रट लेने मात्र से रोटी या सेब का स्वाद नहीं मिल जाता। उसे तोड़कर मुख में डालना पड़ता है, चबाना पड़ता है तब जाकर उसका स्वाद हमें मिल पाता है। वैसे ही गुरु का मिल जाना पर्याप्त नहीं, बल्कि गुरु के द्वारा प्राप्त ज्ञान को, उपदेश को जीवन में जीने का अभ्यास करना महत्त्वपूर्ण है, तभी उस ज्ञान का स्वाद हमें मिल पाता है और हमारे जीवन पर उस ज्ञान का, उपदेश का असर दिखना प्रारंभ होता है।

शारीरिक रूप से गुरु के निकट रहकर जो हमें सान्निध्य प्राप्त होता है, उसका कोई खास महत्त्व नहीं होता है, बल्कि आत्मिक दृष्टि से, हार्दिक दृष्टि से, प्रेमदृष्टि से, भक्ति और समर्पण की दृष्टि से, हम उनके कितने पास हैं, निकट हैं—यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है।

दुर्योधन गुरुभक्ति या गुरु के प्रति समर्पण के बजाय सदैव अहंकार पर सवार होकर ही अपने गुरु को देखता था, पर युधिष्ठिर, अर्जुन आदि पांडव सदैव प्रेमपूरित हृदय, पूर्ण समर्पण और भक्तिपूर्ण हृदय से अपने गुरु को देखते थे। इसलिए उनके गुरु उन्हें कोई सामान्य मनुष्य नहीं, बल्कि ब्रह्मज्ञानी महात्मा, भगवान के प्रतिनिधि रूप ही दिखाई पड़ते थे। इसलिए वे वास्तव में गुरु का दर्शन कर पाते थे, जो मात्र भौतिक नेत्रों से संभव नहीं।

हृदय में श्रद्धा, भक्ति, समर्पण के भावों से पूरित होने के कारण ही तो सूरदास नेत्र न होते हुए भी अपने हृदय में, अपनी आत्मा में नित्य भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन कर पाते थे और वहीं श्रद्धा, भक्ति, प्रेम न होने के कारण, प्रेमदृष्टि, ज्ञानदृष्टि न होने के कारण ही कई बार भगवान श्रीकृष्ण को भौतिक नेत्रों से देखने के बावजूद भी दुर्योधन भगवान का दर्शन नहीं पा सका।

उनके निकट होते हुए भी वह उनका सान्निध्य नहीं पा सका। उनके पास होकर भी वह उनसे दूर ही रहा। जब हृदय में गुरु के लिए, भगवान के लिए सच्चा प्रेम, समर्पण उमड़ता है तब भौतिक नेत्रों से भी भगवान का, गुरु का दर्शन होने लगता है। भगवान या गुरु के प्रति दिव्य प्रेम से दिव्यदृष्टि खुलती है, तब जाकर हम अपने गुरु का, भगवान का दर्शन कर पाते हैं। इसके अभाव में ही तो दुर्योधन ने भगवान श्रीकृष्ण को सदैव एक मनुष्य मात्र के रूप में देखा। भगवान में भी उसे भगवान नहीं दिखाई पड़े।

ज्ञानदृष्टि हो, प्रेमदृष्टि हो तो पत्थर में भी भगवान दिखाई पड़ने लगते हैं, अस्तु गुरु का अथवा भगवान का दर्शन पाने की हममें दृष्टि भी तो होनी चाहिए। हमारे गुरु ने, हमारे भगवान ने जो हमें उपदेश किया है उसे रटने, लिखने, सुनने मात्र के बजाय उसका जीवन में अभ्यास भी तो करें, जिससे भगवान के ज्ञान का, गुरु के ज्ञान का, उपदेश का असर हमारे जीवन में आत्मिक प्रगति, आध्यात्मिक प्रगति के रूप में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो सके और आनंद की तरह हम भी निहाल हो सकें। अर्जुन की तरह हम भी निहाल हो सकें।

अर्जुन निहाल तभी हुए, जब उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण के उपदेश को न सिर्फ सुना, बल्कि भगवान से गीता का ज्ञान सुनकर, पाकर उन्होंने भगवान के कहे अनुसार किया भी। वे युद्ध के लिए तैयार हुए और युद्ध किया। अस्तु हम भी क्यों न अर्जुन की तरह अपने भगवान का, गुरु का सच्चा शिष्य बनें और उनके बताए मार्ग पर चलकर ब्रह्मानंद को प्राप्त करें। शिष्य अपनी सच्ची श्रद्धा, समर्पण, प्रेम व भक्ति के बल पर ही गुरु अथवा भगवान की चेतना से जुड़ पाता है और तब शिष्य अथवा भक्त

की आत्मचेतना और गुरु चेतना अर्थात परमात्म चेतना के बीच दैवी शक्तियों, आध्यात्मिक ऊर्जा का आदान-प्रदान प्रारंभ होता है।

इसके लिए शिष्य का, भक्त का सशरीर अथवा शारीरिक रूप से गुरु या भगवान के निकट होना भी आवश्यक नहीं; क्योंकि सच्ची श्रद्धा के कारण अपने गुरु और आराध्य की चेतना से जुड़ जाने के बाद शिष्य या भक्त दूर होकर भी अपने गुरु और आराध्य के पास होता है और पास होकर भी पास ही होता है। उसके लिए उसके गुरु या आराध्य मात्र मूर्तियों या मंदिरों में नहीं होते, बल्कि सर्वव्यापी होते हैं, जिनकी अनुभूति वह यत्र-तत्र-सर्वत्र करता रहता है।

वह जगत् में रहते हुए, खाते-पीते, सोते-जागते, उठते-बैठते, कार्य करते हुए, कर्म करते हुए सदैव ही अपने आराध्य, अपने गुरु की उपस्थिति की अनुभूति कर पाता है। ऐसे शिष्य की, भक्त की आत्मचेतना, गुरुचेतना अथवा परमात्मचेतना से प्रदीप्त हो उठती है। इसलिए तो ऋग्वेद (1.12.6) में कहा गया है—

अग्निनाग्निः समिध्यते।

अर्थात अग्नि-से-अग्नि और आत्मा-से-आत्मा प्रदीप्त होती है। दीप्तमान आत्माओं के संपर्क में रहकर अपनी आत्मा को प्रदीप्त करो।

पूर्ण श्रद्धा, भक्ति के अभाव में ब्रह्मज्ञानी गुरु अथवा भगवान के पास सशरीर होकर भी लोग कुछ नहीं पाते और श्रद्धा एवं भक्ति से पूरित हो जाने पर गुरु से दूर रहने पर भी शिष्य अपने गुरु, अपने आराध्य की चेतना से जुड़कर निहाल हो जाता है।

इसलिए तो जो संत नामदेव, संत तुकाराम, संत एकनाथ, श्रीरामानुजाचार्य, रामकृष्ण परमहंस, श्री अरविंद, महर्षि रमण, पूज्य गुरुदेव जैसे ब्रह्मज्ञानी गुरुओं से भले ही सशरीर नहीं मिले अथवा उनके दर्शन नहीं कर पाए, वे भी उनकी बताई साधनापद्धति को अपनाकर, संयमित जीवन जीकर, सेवाधर्म को अपनाकर, नित्य गुरु व भगवद्ध्यान, जप, तप, स्वाध्याय आदि करके जीवनलक्ष्य को पाने में सफल हुए हैं।

परमपूज्य गुरुदेव का तो यह स्पष्ट उद्घोष ही था कि—'मैं व्यक्ति नहीं विचार हूँ। मेरा स्वरूप मेरे साहित्य में, मेरे विचारों में छिपा है। मुझसे जो कोई भी मिलना चाहता है, मार्गदर्शन चाहता है वह मुझे मेरे विचारों में, निस्संदेह पा सकता है।'

श्रीरामकृष्ण परमहंस के महाप्रयाण के बाद श्री शारदामणि माँ ने संतप्त शिष्यों को आश्वस्त करते हुए कहा था कि 'पुत्र! तुम्हारे गुरु सशरीर नहीं हैं, पर वे सर्वव्यापी और सक्रिय हैं और तुम्हारा मार्गदर्शन व संरक्षण करने को सदैव तथा सर्वत्र सक्रिय हैं।' अस्तु हम भी अपने गुरु, अपने आराध्य के उपदेशों पर चलकर क्यों न सच्चे शिष्य, सच्चे गुरु भक्त, भगवद्भक्त बनें और अपने जीवन को धन्य बना लें। ❑

युगधर्म ने जिस एक आधार को प्रमुख घोषित किया है, वह है विचार क्रांति, जन-मानस का परिष्कार, प्रचलनों में विवेकसम्मत निर्धारणों का समावेश। यह सब क्रियापरक कम, भावना प्रधान अधिक है। इसके लिए विचारणा से लेकर भाव-संवेदनाओं की मानसिकता को झकझोरने से काम चल जाएगा। दृष्टिकोण में बदलाव आने पर प्रचलनों में उलट-पुलट होकर रहेगा। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

धर्मोपदेश से मिलती है नई जीवन-दृष्टि

राजगृह का विशाल समारोह कक्ष श्रोताओं से खचाखच भरा था। तीर्थंकर महावीर का प्रवचन चल रहा था। उनकी वाणी से ज्ञानामृत बरस रहा था। समारोह में बैठे लोग उसका पान कर रहे थे। समारोह में सम्राट श्रेणिक, महामंत्री अभय कुमार आदि मूर्द्धन्य भी महावीर का धर्मोपदेश सुनने में मग्न थे। वातावरण में तीर्थंकर के उद्‌बोधन से ज्ञान एवं वैराग्य की धारा बह चली।

समारोह में बैठे सभी लोग उन्हें सुनने में मग्न और मस्त थे क्रि तभी वहाँ एक वृद्ध व्यक्ति का आगमन हुआ। लाठी टेकता हुआ वह वृद्ध व्यक्ति अचानक सभा में प्रविष्ट हुआ और समारोह में व्याप्त शांति और गंभीरता भंग हुई। उस व्यक्ति की कमर अत्यंत झुकी हुई थी। उसके वस्त्र फटे हुए थे। शरीर में कुष्ठ रोग के कारण मवाद की दुर्गंध फैल रही थी। बिना किसी की परवाह किए वह सभा को चीरते हुए सीधे सम्राट श्रेणिक के सामने पहुँचा।

धर्म उपदेश बंद हो चुका था; क्योंकि सबकी निगाहें उस वृद्ध व्यक्ति पर टिकी थीं। सम्राट की ओर अभिमुख होकर वह बोला—"आयुष्मान! आप जीते रहें।" मन-ही-मन सभी सोचने लगे कि यह कैसा असभ्य और ढीठ है, जो महावीर की उपेक्षा करके बिना अभिवादन किए राजा के निकट पहुँच उन्हें आशीष दे रहा है। कुछ ही क्षणों में वह महावीर के सामने जा पहुँचा और उसी स्वर में बोला—"आप शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त करें।" सम्राट श्रेणिक की भौंहें तन गईं।

उस वृद्ध व्यक्ति की अशिष्टता हर किसी को अखरी। सबके मन से आक्रोश फूटने लगा, पर वह महावीर की धर्मसभा थी, जहाँ हर किसी को अपनी बात कहने का अधिकार था, अस्तु मर्यादावश कोई कुछ नहीं बोल सका। तब तक वह व्यक्ति अपनी लाठी टेकते हुए महामंत्री के पास पहुँच चुका था। क्रोध मिश्रित भाव से सभी उस वृद्ध की ओर घूर रहे थे।

वृद्ध ने महामंत्री की ओर मुस्कराकर देखते हुए कहा—"महामंत्री! तुम चाहे जियो, चाहे मर जाओ।" मन-ही-मन सब सोचने लगे—संभवत: वृद्ध व्यक्ति का मानसिक संतुलन ठीक नहीं है, इसलिए वह अनाप-शनाप बातें कर रहा है। इतने में वह राजगृह के क्रूर कसाई काल शौकरिक के पास जा पहुँचा, तथा उसे संबोधित करते हुए बोला—"शौकरिक! तुम न मरो न जियो।" यह कहकर वह देखते-ही-देखते सभी के नेत्रों के सामने से ओझल हो गया। इस घटनाक्रम से सारी सभा स्तब्ध थी। हर व्यक्ति अब सोचने लगा कि कुछ-न-कुछ विशेष रहस्य की बात है।

कौन था वह वृद्ध? उसके कथनों का अभिप्राय क्या है? हर किसी के मन में ये प्रश्न बारंबार उठ रहे थे। सम्राट से रहा न गया सो वे तीर्थंकर से पूछ पड़े—"देव! यह विचित्र व्यक्ति कौन था? उसके कथनों का क्या रहस्य है? हम सबके असमंजस को आप दूर करने की कृपा करें।" तत्त्वदर्शी तीर्थंकर मुस्कराए तथा बोले—"राजन्! वह साधारण मनुष्य नहीं, बल्कि स्वयं महाधिदेव विवेक थे, जो हर किसी को सत्य का विशेष संकेत देकर चलते बने।"

रहस्य को स्पष्ट करते हुए तीर्थंकर ने कहा—"राजन्! वृद्ध ने तुमसे कहा—जीते रहो। इसका संकेत यह है कि तुम्हारे सामने भौतिक ऐश्वर्य का अंबार

प्रस्तुत है। जिसका तुम उपभोग कर रहे हो। मरने के बाद तुम्हारे सामने दुःख-ही-दुःख हैं; क्योंकि वर्तमान के कर्मफल दुःखों के रूप में फल प्रस्तुत होने वाले हैं। इसलिए तुम्हारे लिए जीना ही श्रेष्ठ है।''

वृद्ध के दूसरे कथन का आशय स्पष्ट करते हुए महावीर ने कहा—''पूर्वजन्म के कर्मफलस्वरूप मुझे जीवन धारण करना पड़ा, पर तप-साधना के द्वारा अब मेरे लिए शुद्ध, बुद्ध की स्थिति बनी है। सो वृद्ध व्यक्ति मेरे शरीर को अब बंधन मानता है तथा मरण को सदा के लिए मुक्ति। इसलिए उसने मुझे कहा—''मर जाओ।''

मंत्री अभय कुमार की ओर उन्मुख होकर महावीर बोले—''मंत्री का जीवन भोग एवं योग से संतुलित है। निष्काम भाव से वह काम कर रहा है। इसलिए उनका वर्तमान जीवन भी सुखी है, ताकि अगला जीवन भी श्रेष्ठ होगा। इसलिए उसने कहा- तुम चाहे जियो, चाहे मरो।''

वृद्ध व्यक्ति ने क्रूर कसाई काल शौकरिक से कहा था—''शौकरिक! तुम न मरो न जियो।'' वृद्ध के इस चौथे कथन का भाव स्पष्ट करते हुए महावीर ने सम्राट श्रेणिक से कहा—''राजन्! काल शौकरिक का वर्तमान जीवन दुःख, शोक से, पापकर्मों, हिंसा एवं क्रूरता से भरा है। इसलिए अगले जीवन में भी उसे सुख-शांति नहीं मिल सकती। इसलिए उसका न जीना अच्छा है और न ही मरना।''

उस वृद्ध व्यक्ति के कथनों की महावीर के द्वारा की गई सम्यक व्याख्या से सम्राट की आँखें खुलीं और वहाँ उपस्थित जनसमुदाय को भी नई जीवन-दृष्टि मिली। सचमुच धर्मोपदेश से हमें वह जीवन-दृष्टि मिलती है, जिससे हमारा जीवन बदलता है और सुखी होता है और हमारे लिए मोक्ष-मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त होता है। ❑

सूर्य का प्रकाश लेकर दो किरणें चलीं। एक कीचड़ में गिरी तो दूसरी पास उग रहे कमल के फूल पर। जो किरण कमल पर गिरी वह दूसरी से बोली—''देखो! जरा दूर ही रहना। मुझे छूकर कहीं अपवित्र न कर देना।''

कीचड़ वाली किरण यह सुनकर हँसी व बोली—''बहन! जिस सूर्य का प्रकाश हम दोनों लेकर चली हैं, उसे सारे संसार में अपना प्रकाश भेजने में संकोच नहीं है तो यह आपस में मतभेद कैसा? और फिर यदि हम ही इस कीचड़ को नहीं सुखाएँगी तो इस पुष्प की रक्षा कैसे होगी?'' दूसरी किरण अपने दंभ पर लज्जित ही हो सकती थी।

श्रीरामकृष्ण परमहंस की तीर्थयात्रा

एक बार श्रीरामकृष्ण परमहंस, मथुर, उनकी पत्नी और कुछेक अन्य लोगों के साथ तीर्थयात्रा पर निकले। मथुर और उनकी पत्नी ने ही तीर्थयात्रा की योजना बनाई थी और बहुत अनुनय-विनय करके श्रीरामकृष्ण को भी तीर्थ यात्रा पर चलने को सहमत कर लिया था। सो जनवरी, 1868 में वे सभी दक्षिणेश्वर से तीर्थयात्रा को निकल पड़े।

वे लोग देवघर पहुँचे और वहाँ कुछ दिनों तक ठहरे। भगवान शिव के द्वादश ज्योतिर्लिंगों में से एक बैजनाथ धाम (देवघर) शताब्दियों से शिवपूजा का पुनीत धाम रहा है व शिवपूजा के लिए विख्यात रहा है। उस पुण्य, पुनीत धरा पर पहुँचते ही श्रीरामकृष्ण का हृदय आह्लादित हो उठा। उन्हें वहाँ दिव्य अनुभूति हुई।

वहाँ प्रवास के दौरान एक दिन देवघर के एक गाँव से होकर जाते समय, वहाँ के लोगों की दुःख-दुर्दशा देखकर उनका हृदय करुणा से भर उठा और उन्होंने मथुर से कहा—"मथुर! तुम तो माँ (जगदंबा) के दीवान हो। इन सब लोगों को एक-एक धोती और भरपेट भोजन दो।" मथुर पहले तो सहमत न हुए और बोले—"बाबा! अभी तो पूरी तीर्थयात्रा करनी है। तीर्थयात्रा में बहुत खरच होगा और इन लोगों की संख्या भी काफी है अस्तु इन सभी को खिलाने-पहनाने से पैसों की कमी हो सकती है। फिर हम तीर्थयात्रा भला कैसे कर पाएँगे? इस हालत में आपका क्या कहना है?" परंतु हर जीव में शिव को देखने वाले श्रीरामकृष्ण भला कहाँ मानने वाले थे?

ग्रामवासियों का कष्ट देखकर वे अश्रुपात करते हुए बोले—"धिक्कार है तुझे! जा मैं तीर्थयात्रा को नहीं जाता! मैं तेरी काशी को नहीं जाता। मैं इन असहाय लोगों के साथ ही रहना पसंद करूँगा।"

फिर मथुर ने श्रीरामकृष्ण से क्षमा माँगते हुए कहा—"आप जैसा कहें, मैं वैसा ही करूँगा।" फिर मथुर ने पोटली से पैसे निकालकर सबके लिए भोजन और वस्त्र की व्यवस्था की। श्रीरामकृष्ण बोले—"मथुर हर जीव में शिव का वास है, अस्तु शिव भाव से जीव सेवा किया करो, जीव सेवा से शिव अवश्य प्रसन्न होते हैं।" इस प्रकार उनके कहे अनुसार मथुर ने वहाँ के दीन-दुःखियों की यथासंभव सेवा की।

देवघर के बाद वे काशी विश्वनाथ का दर्शन करने को वाराणसी पहुँचे। बाबा विश्वनाथ के पावन धाम में पहुँचते ही श्रीरामकृष्ण परमहंस भावविभोर हो उठे। उन्होंने संपूर्ण वाराणसी को बाबा विश्वनाथ की अभिव्यक्ति के रूप में ही देखा और अनुभव किया। बाबा विश्वनाथ के ज्योतिर्लिंग के रूप में उन्होंने अपने भावनेत्रों से साक्षात् भगवान शंकर का दर्शन किया और भावसमाधि में डूब गए। कुछ देर तक वे उसी भावावस्था में रहे।

वे गंगा के तट पर बैठकर परमपावनी गंगा की लहरों को देखकर अभिभूत हो गए। गंगातट से जब वे भगवान विश्वनाथ का दर्शन करने जाते तो वे रास्ते में ही भावाविष्ट हो जाते थे। वे कहते कि साधु-संतों के अंतर से निस्सृत अमूल्य स्वर्णिम भावराशि ही युग-युगांतर से इस वाराणसी नगरी में घनीभूत हुई है। वे गंगा जी के किनारे स्थित अन्य

मंदिरों का दर्शन कर प्राय: भावसमाधि में ही डूब जाते। उनके लिए काशी, वाराणसी कोई ईंट-पत्थरों से बनी सामान्य नगरी मात्र नहीं थी, बल्कि उन्हें वहाँ के कण-कण में शंकर के होने की अनुभूति हो रही थी।

वाराणसी में उन्होंने अपने भावनेत्रों से जो देखा उसके विषय में उन्होंने स्वयं कहा है कि मैंने वहाँ देखा कि पिंगलवर्ण के, जटाजूट धारण किए एक दीर्घाकार श्वेतवर्ण पुरुष धीरे-धीरे श्मशान की प्रत्येक चिता के समीप जाते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को यत्नपूर्वक उठाकर उसके कान में तारक ब्रह्ममंत्र प्रदान करते हैं।

सर्वशक्तिमयी जगदंबा भी महाकाली के रूप में चिता के दूसरी ओर बैठकर प्रत्येक जीव के स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि सब प्रकार के संस्कार बंधन को खोल देती हैं और निर्वाण का द्वार उन्मुक्त कर उसे स्वयं ही अखंड के घर भेज रही हैं। इस प्रकार अनेक कल्प की तपस्यादि के द्वारा जीव को जिस अद्वैतानुभवजनित भूमानंद की प्राप्ति होती है, वाराणसी में देहत्याग करने वालों को विश्वनाथ तत्काल ही वह सौभाग्य प्रदान कर उन्हें कृतार्थ कर रहे हैं।

अपने वाराणसी प्रवास काल में वे वहाँ के महान संत तैलंगस्वामी से भी मिले और उन्हें देखते ही उनके परमहंसत्व को पहचान गए। मानो एक परमहंस दूसरे परमहंस को देखकर आनंदविभोर हो गए। तैलंगस्वामी के विषय में श्रीरामकृष्ण परमहंस ने कहा—"मैंने देखा कि साक्षात् विश्वनाथ उनके शरीर का आश्रय लेकर प्रकट हुए हैं। उनके निवास से वाराणसी उज्ज्वल बनी हुई है।

"वे ज्ञान की उच्च अवस्था में थे और देह की ओर उनका कोई ध्यान न था। धूप से तपते बालू पर वे आराम से लेटे हुए थे। मैंने उनसे इशारे से पूछा कि ईश्वर एक हैं या अनेक। उन्होंने संकेत के द्वारा ही मुझे समझा दिया कि 'यदि समाधिस्थ होकर देखो तो वे एक हैं, परंतु जब तक हम, तुम, जीव, जगत् आदि नानात्व का बोध है, तब तक वे अनेक हैं।'

"उन्हें दिखाते हुए मैंने हृदय से कहा था—इसी को ठीक-ठीक परमहंस अवस्था कहते हैं।" वाराणसी के बाद वे सभी प्रयाग स्थित त्रिवेणी संगम पहुँचे और वहाँ की आध्यात्मिक ऊर्जा से सराबोर हो उठे। वे वहाँ तीन दिनों तक ठहरे। उन्होंने त्रिवेणी संगम में स्नान किया।

शास्त्रीय विधान के अनुसार मथुर तथा अन्य सभी ने वहाँ मुंडन करवाया, पर श्रीरामकृष्ण ने यह कहकर स्वयं मुंडन नहीं कराया कि मेरे लिए इसकी आवश्यकता नहीं। वे भगवान श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाभूमि वृंदावन के भी दर्शन करने पहुँचे। असंख्य वैष्णव महात्माओं के संसर्ग से धन्य हुई यह भूमि श्रीरामकृष्ण परमहंस जैसे स्थितप्रज्ञ संत के संसर्ग को पाकर मानो धन्य-धन्य हो गई। इस तीर्थक्षेत्र में आकर श्रीरामकृष्ण उच्च भाव में अवस्थान करने लगे।

भगवान श्रीकृष्ण की बाललीला से संबंधित स्थानों में उन्हें समाधि लग जाती और उनके भाव नेत्रों से वे घटनाएँ प्रत्यक्ष दीख पड़ती थीं। मथुरा में उन्होंने अपनी दिव्य भावावस्था में देखा कि वसुदेव बालकृष्ण को गोद में उठाए चले जा रहे हैं। अपने दक्षिणेश्वर निवास के दौरान श्रीरामकृष्ण ने इस तीर्थयात्रा के अतिरिक्त यदा-कदा बंगाल के कुछ तीर्थों की भी यात्रा की थी।

श्री चैतन्य महाप्रभु के जन्म तथा बाललीला से संबद्ध नवद्वीप की यात्रा के दौरान उन्हें यह

आभास हुआ कि चैतन्य महाप्रभु ने जिस स्थान पर अपना ईश्वरोन्मत्त जीवन बिताया था, वह अब गंगा के गर्भ में समा चुका है। श्रीरामकृष्ण की तीर्थयात्रा के दौरान उन्हें जो दिव्य अनुभूतियाँ हुईं, उससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन तीर्थक्षेत्र असीम आध्यात्मिक ऊर्जा से ऊर्जस्वित और आध्यात्मिक भावों से सदैव स्पंदित होते रहते हैं, जिन्हें श्रीरामकृष्ण जैसे उच्चकोटि के संत व परमहंस ही अनुभव कर सकते हैं।

यदि हम भी तीर्थयात्राएँ दिव्य व पवित्र मनोभाव के साथ करें तो हम तीर्थों की आध्यात्मिक ऊर्जा से ऊर्जस्वित और स्पंदित हो सकते हैं। सचमुच अद्‌भुत है श्रीरामकृष्ण की तीर्थयात्रा। ❑

कर्कटी नाम की एक राक्षसी को क्षुधा बहुत तीव्र थी। वह समय-कुसमय, बाल-वृद्ध किसी को भी भक्षण कर जाती थी। फिर भी भूखी रहती थी। उसने अपनी कठिनाई ब्रह्माजी से कही।

उन्होंने अनुग्रहपूर्वक उसे सूई जैसा छोटा बना दिया। तनिक-सी रक्त बूँद पीने से उसकी तृप्ति हो जाती। इस पर मृतकों के ढेर जमा होने लगे और दुर्गंध फैलने लगी।

कर्कटी ने फिर इस अव्यवस्था की चर्चा ब्रह्माजी से की। उन्होंने उसका पुरातन रूप बना दिया। साथ ही यह भी कहा कि वह कुछ प्रश्न पूछकर हर किसी से यह जान लिया करे कि वह मरणयोग्य है भी या नहीं ? जो मृत्यु के मुख में जाने योग्य हो, उसी को खाया कर। किसी आत्मवेत्ता पर हाथ न डालना; क्योंकि अमर जीवन पर विश्वास करने के कारण वो शरीर छोड़ने पर भी मर नहीं सकते। कर्कटी वैसा ही करती।

आत्मा का अमरत्व जिन्हें विदित होता, वे उसकी हँसी उड़ाकर प्रसन्नतापूर्वक शरीर त्याग देते। जिन्हें अज्ञान का नागपाश जकड़े होता, वही मृत्यु के समय बिलखते, उन्हीं का मांस कर्कटी को स्वादिष्ट लगता। एक बार वह सुंदर नर्तकी का वेश बनाकर राजमहल में चली गई। जिन कुकर्मियों को प्राणदंड मिलता, उनसे पेट भरती और जो उसके नृत्य-गायन पर मुग्ध हो जाते, उन्हें चूसकर खोखला कर देती।

राजा की सभा में जो ज्ञानवान आते, उनसे भी वह दूर रहती। मृत्यु का डर अज्ञानियों और कुकर्मियों को ही लगता है।

मनोनिग्रह ही आत्मविजय है

मन पर नियंत्रण की असफलता मनुष्य के जीवन की असफलता है, क्योंकि एक मन ही है जिसे वश में कर हम जीवन में अनेक सिद्धियों एवं शक्तियों के अधिकारी बनते हैं। मन से पर्याय आम बोलचाल की भाषा के विचित्र किस्म के मन से नहीं, मन का सीधा संबंध आपके प्रत्यक्ष अनुभव से है। आप मन से कितना उन्मुक्त एवं मन को अपने अनुसार ढालने में सफल होते हैं यह चर्चा का विषय है।

मन एक आधी-अधूरी चाल है। मन का संबंध जब तक आपके अंतरंग की दिव्य ज्योति से नहीं होता, मन आपका इच्छावर्ती और आपकी सभी संभावनाओं को साकार करने वाला नहीं बन जाता, तब तक मन का वास्तविक उपाय या यों कहें कि उसकी शक्ति का क्रियान्वयन संभव नहीं होता है।

मन का पारदर्शी होना इस बात पर निर्भर है कि मनुष्य ने उसके द्वारा अपनी भीतरी संभावनाओं को उजागर करने का कितना प्रयास किया है। उसने मन की शक्ति को आत्मवर्ती बनाने एवं उससे महत्त्वपूर्ण उपादान प्रस्तुत करने में कितनी सफलता पाई है।

मन का समदर्शी होना अध्यात्म की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण बताया गया है, परंतु संसार की दृष्टि से भी, उसका महत्त्वपूर्ण सफलताओं से युक्त होना तभी संभव है जब मन का क्रियान्वयन सही तरीके से किया जाए। मन की कमजोरी का एक इलाज, विकारों को खुली छूट देने के स्थान पर उनका शमन, या कहें दिखते ही उन्हें त्वरित समाप्त करने की नीति है। मन आपका इच्छानुवर्ती बने इसके लिए बहुत आवश्यक है कि आप मन से पार उसके वास्तविक केंद्र से उसका संचालन करें।

मन से परे आत्मा का अस्तित्व है और आत्मस्वरूप से एकाकार होने का मार्ग ही अध्यात्म का मार्ग है। सरल शब्दों में अध्यात्म जीवन निर्माण की विधा है और स्वयं को जागरूक बनाने का विधान है। जिन कारणों से व्यक्ति अपने में परिवर्तन नहीं कर पाता है, वे हैं स्वयं पर अनुचित विश्वास अर्थात बिना यह जाने कि उस विश्वास का केंद्र क्या है।

दूसरा अत्यधिक सोचना अर्थात बिना उस सोच की बुनियाद को पहचाने सोचते चले जाना एवं अत्यधिक कर्म की चेष्टा, बिना यह स्वीकारे कि कर्म किया किस दृष्टिकोण से जाना चाहिए। हमने मन को एक उपकरण के स्थान पर स्वयं मन से संचालित होने का उपक्रम अपना लिया है।

आत्मप्रेरणा से संयुक्त मन अब ढर्राबद्ध हो कर्म करने को प्रेरित हो गया है। निचली मान्यताओं ने जगह बना ली और सच में जो जीवन का सौभाग्य है वह पदार्पित न हो पाया। चेतना के उच्च शिखर पर अवस्थित मन अब किसी प्रकार लेन-देन की प्रक्रिया में व्यस्त हो गया। हममें से ज्यादातर लोग इस गलत धारणा के शिकार हैं कि अध्यात्म किसी दूसरे ही लोक की खोज-खबर है, परंतु ऐसा नहीं है। यह समूचे व्यक्तित्व को और जीवन के विशाल परिदृश्य को एक विशेष दृष्टि से देखने की प्रक्रिया है।

अध्यात्म का अभिप्राय स्व-निर्माण से है और उसी से संसार में सुख-शांति का भी प्रसार किया जा सकता है, परंतु इस उद्देश्य की खातिर अपने

तन, मन, प्राण, संवेदना सभी स्तरों पर एक दिव्य ज्योति के जलने की प्रक्रिया घटित होनी अवश्यंभावी है।

यदि व्यक्तित्व का पूर्ण परिष्कार नहीं हुआ है, तो न ही व्यक्ति का मन सुंदर व गुणी बन सकता है, न ही उसमें किसी विशिष्ट क्रियापद्धति के अनुसार अपने को ढालने की सामर्थ्य ही पनप सकती है। यदि चिंतन को न बदला गया तो चेतना में परिवर्तन की आकांक्षा करना व्यर्थ है, अपनी आदतों का परिष्कार स्वयं के चिंतन में एक आदर्शयुक्त क्रियाप्रणाली को अपनाने से होता है।

स्वयं से बड़ा अपना हितदर्शक कोई हो नहीं सकता है, इसलिए सर्वप्रथम अपने विचार-जगत् में शांति एवं अपने प्रत्येक कर्म में कौशल हमें विकसित करना चाहिए। यही सुव्यवस्थित एवं समुन्नत जीवन का राजमार्ग है। सबसे पहले आत्मदर्शी बनना सीखिए, उसके उपरांत विचारों का ज्वलंत प्रवाह स्वयं आपको आगे की राह दिखा देगा।

जिन भी परेशानियों से आपका जीवन जूझ रहा है, उनका निराकरण इसी तरह से संभव है कि आप समाधान को कहीं बाहर न खोजें, उसे अपनी ही चेतना में अवस्थित पाएँ, तब उन समस्याओं का वास्तविक निराकरण संभव है।

जीवन में दिव्यता उभारने वाला, इनसान को उसकी प्रवृत्तियों की दासता से मुक्त करने वाला, उसे नए सिरे से सोचने को प्रेरित करने वाला यदि कोई तरीका है, तो वह अध्यात्म ही है।

इसका अर्थ आंतरिक पर्यवेक्षण द्वारा बहिर्जगत् में अपनी चेतना का निर्माण, अपनी आदतों का परिशोधन, अपनी मान्यताओं में परिवर्तन कर श्रेष्ठ-समुन्नत बनने की कला को अधिक विकसित करना है। ❑

एक संत से उनके एक शिष्य ने पूछा—"गुरुवर! मैं सत्य कैसे पा सकता हूँ?" संत ने प्रत्युत्तर में उससे उसकी उँगली में डली अँगूठी माँगी और उससे पूछा—"यह अँगूठी कितने रुपये की है।" शिष्य बोला—"गुरुवर! यह मेरे लिए अनमोल है। यह मेरे पिता की अंतिम निशानी है।" यह सुनते ही संत ने वह अँगूठी पास के खेत में फेंक दी। यह देखकर शिष्य व्यग्र होते हुए बोला—"गुरुदेव! यह आपने क्या किया? वह अँगूठी बहुमूल्य थी। अब उसे खोजने में मेरा बहुत समय चला जाएगा।"

गुरु बोले—"वत्स! समय चला भी जाए, तब भी वह अँगूठी तुम्हें मिल ही जाएगी, परंतु जितनी व्यग्रता तुम्हें उस अँगूठी को पाने की है यदि उतनी ही व्यग्रता सत्य को पाने की होगी तो तुम्हें सत्य पाने से कोई रोक नहीं सकेगा।"

शिष्य की समझ में आ गया कि साधना के साथ संकल्प भी सफलता पाने के लिए जरूरी है।

केसर का रोचक संसार

केसर एक सुपरिचित रेशेदार मसाला है, जिसका नाम सुनते ही कश्मीर की सुंदर वादियों में लाल-नारंगी फूलों से ढके खेत जेहन में आते हैं; जबकि केसर का मूल स्थान भारत से बाहर माना जाता है। साथ ही केसर विश्व का सबसे महँगा मसाला है। ऐसा क्यों है, शायद ही बहुत कम लोग जानते हों। प्रस्तुत हैं यहाँ केसर से जुड़ी रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक जानकारियाँ, जो पाठकों के लिए रोमांचक एवं उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

केसर को विश्व का सबसे कीमती मसाला माना जाता है, जो अढ़ाई से पाँच लाख रुपये प्रति किलोग्राम के हिसाब से बिकता है। इसकी विश्व में सबसे अधिक पैदावार ईरान में होती है, जो विश्व की उपज का 80 प्रतिशत है। जबकि भारत में मुख्यतया जम्मू-कश्मीर में केसर की खेती होती है। जम्मू का किश्तवाड़ तथा कश्मीर का पंपोर क्षेत्र इसके लिए जाना जाता है। हिमाचल के कुछ दूरस्थ क्षेत्रों में भी इसकी खेती होती है।

केसर को कुंकुम, जाफरान, सैफ्रन जैसे कई नामों से जाना जाता है। माना जाता है कि सिकंदर यूरोप से केसर को भारत में लाया था। वह जहाँ से गुजरता गया, वहाँ इसका प्रसार करता गया। यूरोप के यूनान में प्राचीनकाल से इसकी पैदावार होती रही है।

आज भी यूरोप में इटली, स्पेन, इंग्लैंड, कोसोवो, न्यूजीलैंड, ऑस्ट्रिया आदि देशों में केसर की खेती होती है। इसके साथ एशिया में भारत सहित तुर्किस्तान व चीन इसके उत्पादक देश हैं। केसर एक विशेष प्रकार की आबोहवा व मिट्टी में उपजता है।

इसी कारण प्राकृतिक रूप में यह भारत एवं विश्व के सीमित क्षेत्रों में ही उगाया जाता है। केसर के लिए शीतोष्ण सुखी जलवायु व लाल रंग की दोमट मिट्टी सर्वोत्तम मानी जाती है। इसके लिए मौसम न अधिक गरम चाहिए और न अधिक सरद। कश्मीर के पंपोर क्षेत्र में ऐसी आबोहवा व मिट्टी पाई जाती है, इसी कारण यह देश में केसर उत्पादन का गढ़ माना जाता है। यहाँ से तैयार केसर विश्व भर में अपनी गुणवत्ता के लिए माना जाता है।

केसर का पौधा वर्ष में एक बार फूलता है और फिर इसका प्रसंस्करण किया जाता है। इसकी प्रक्रिया हाथों से की जाती है, जो बहुत श्रमसाध्य एवं समयसाध्य कार्य है। इसी कारण केसर बहुत महँगा बिकता है। एक किलो केसर के लिए 1.5 लाख फूलों की आवश्यकता होती है। मालूम हो कि एक केसर के फूल में मात्र 3 धागे या रेशे निकलते हैं।

वास्तव में ये रेशे फूल के मादा हिस्सा-वर्तिका और वर्तिकाग्र होते हैं। इनका रंग लाल रंग का होता है। यह जितना गहरा लाल होगा, उसकी गुणवत्ता उतनी अधिक मानी जाती है। ये नीचे से पतले व आगे से थोड़े चौड़े होते हैं। कश्मीर के केसर का निचला हिस्सा थोड़ा पीलापन लिए होता है।

केसर की पंखड़ियों को भी उपयोग किया जाता है और इसके नर हिस्सा अर्थात पुंकेसर का भी अपना उपयोग रहता है, लेकिन मूलत: केसर फूल का मादा हिस्सा अर्थात वर्तिका को ही उपयोग में लिया जाता है।

केसर के अपने विशिष्ट औषधीय गुण हैं, जिसके कारण यह पारंपरिक चिकित्सा-क्षेत्र का एक बहुमूल्य घटक है। इसे अनेकों तत्त्वों जैसे मैंग्नीज, ताँबा, जस्ता, मैग्नीशियम से भरपूर माना जाता है। साथ ही यह एंटी-ऑक्सीडेंट व एंटी-डिप्रेसेंट गुण लिए होता है।

इस कारण सिरदरद से लेकर थकान में यह उपयोगी माना जाता है। दूध में घोलकर देने पर यह बच्चों के लिए सरदी व जुकाम में लाभ देता है। इसमें क्रोसीन तत्त्व पाए जाने से यह बुखार में राहत देता है, साथ ही एकाग्रता व स्मरणशक्ति को बढ़ाता है।

गर्भवती महिलाओं को दूध में इसे डालकर देना उत्तम माना जाता है। महिलाओं के अंत:स्रावी असंतुलन को ठीक करने में इसे कारगर माना जाता है। कैंसर की रोक-थाम तक में इसकी उपयोगिता मानी गई है।

अपनी विशिष्ट गंध के कारण यह नींद लाने में सहायक रहता है। आश्चर्य नहीं कि पुरातनकाल में यूनान में लोग तकिए में केसर को डालकर सोते थे। मिस्र की रानी अपने रूप को निखारने के लिए सौंदर्य प्रसाधन के रूप में इसका उपयोग करती थी। केसर को लेकर यूरोप में युद्ध तक हुए हैं। स्विट्जरलैंड और ऑस्ट्रिया के बीच सन् 1374 से शुरू हुई चौदहवर्षीय सेफरन वार प्रसिद्ध है। युद्धों में घाव भरने के लिए तक औषधि के रूप में इसका उपयोग किया जाता रहा है।

केसर को एक गरम औषधि के रूप में माना जाता है, इसलिए सरद इलाकों में पेय व आहार में इसका भरपूर उपयोग किया जाता है। आज तो लोग घरों में, पॉलीहाउस व प्रयोगशाला में उचित वातावरण निर्मित कर केसर की खेती कर रहे हैं और इससे व्यावसायिक तौर पर भरपूर लाभ लेने का दावा कर रहे हैं, लेकिन प्राकृतिक रूप में तैयार किए गए केसर का कोई विकल्प नहीं है।

केसर की दुर्लभता व इसकी उपयोगिता तथा माँग को देखते हुए आज इसके फर्जी प्रारूप भी बाजार में उपलब्ध हैं, जिनसे सावधान रहने की आवश्यकता है। मोटे तौर पर असली केसर पानी में घुलता नहीं है, व धीरे-धीरे रंग छोड़ता है; जबकि नकली केसर तुरंत रंग छोड़ता है और घुल भी जाता है।

महँगा होने के कारण केसर सर्वसाधारण लोगों की पहुँच से बाहर है, लेकिन आवश्यकता पड़ने पर व संसाधन होने पर इसका समुचित उपयोग किया जा सकता है। मालूम हो कि गहरा केसरिया रंग देश के राष्ट्रीय ध्वज की एक पहचान है, जिसे साहस, बलिदान और देशभक्ति का प्रतीक माना जाता है।

कुल मिलाकर केसर एक महँगा मसाला होने के साथ अपने साथ एक अद्भुत इतिहास, भूगोल, औषधीय ज्ञान व देशभक्ति का भाव समेटे हुए है, जिसका उत्पादन कर इसे स्वावलंबन का भी आधार बनाया जा सकता है। ❑

प्रजा सुखे सुखं राज्ञः प्रजानां च हिते हितम्।
नात्मप्रियं हितं राज्ञः प्रजानां तु प्रियं हितम्॥

—कौटिल्य नीति

प्रजा के सुख में राजा का सुख है और प्रजा की भलाई में उसकी भलाई है। अत: जो अच्छा लगे उसे ही वह अच्छा न माने बस, जो प्रजा को पसंद हो, उसे अपनी पसंद बनाए।

सकारात्मक विचार

सकारात्मक विचार को अमृत के समान माना गया है। इस संदर्भ में एक प्रसंग आता है। एक मोची बैठा जूते सिल रहा था, तभी उसके पास एक दार्शनिक आया। उसने मोची, जो कि वास्तव में एक सूफी संत था, से आकर कहा कि मेरे जूते की सिलाई कर दो, लेकिन मोची ने उसका जूता सीने से इनकार कर दिया; क्योंकि उसकी दुकान बंद करने का समय हो चुका था।

दार्शनिक बोला—"देखो भाई! अगर तुम जूते की सिलाई नहीं करोगे तो मेरे पास पहनने के लिए केवल एक ही जूता रहेगा। इसलिए मेरी कठिनाई समझो और जूते की मरम्मत कर दो।" मोची ने पूछा—"क्यों? अगर आप दूसरों के विचार उधार ले सकते हैं तो जूता क्यों नहीं?" इस पर दार्शनिक निरुत्तर हो गया।

हमने सदा ही दूसरों से विचार लिए हैं और हम दूसरों से ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त करके बड़े होते आए हैं। हम दूसरों से जो विचार, ज्ञान और अनुभव प्राप्त करते हैं, उसी आधार पर हम अपने विचारों का पोषण करते हैं, फिर वे चाहे निराशावादी हों या आशावादी हों।

इसका अर्थ यह हुआ कि यह विचारों पर निर्भर करता है कि वे नकारात्मक हैं या सकारात्मक। यदि हमने सकारात्मक विचार ग्रहण किए हैं तो हम भविष्य में भी सार्थक विचारों के साथ आगे बढ़ेंगे और यदि वे विचार नकारात्मक हैं तो निश्चय ही हम भी नकारात्मक विचारों के सहारे ही आगे बढ़ेंगे।

नकारात्मक या सकारात्मक सोच वाले लोग अपने बच्चों को भी यही सोच देते हैं। माता-पिता को अपने बच्चों से नकारात्मक बातें नहीं करनी चाहिए। हमें इस मामले में बहुत सतर्क रहना चाहिए कि हमारी सोच, हमारे व्यक्तित्व और हमारे व्यवहार को किस प्रकार के विचार प्रभावित कर रहे हैं, वे नकारात्मक हैं या सकारात्मक।

इसके लिए हमें अपना आत्मबल बढ़ाना होगा, ताकि हम स्वयं नकारात्मक विचारों से अपने को बचा सकें। याद रखें कि नकारात्मक सोच हमें सदा पीछे की ओर धकेलती है। इस कारण हम जीवन में कभी सफल व्यक्ति नहीं बन पाते। बेहतर यही है कि हम हमेशा सार्थक विचार ग्रहण करें और उनके ही प्रभावों को स्वीकार करें।

जो सर्वश्रेष्ठ पाना चाहते हैं, सार्थक विचार उन लोगों के लिए श्रेष्ठतम मूल्य प्रस्तुत करते हैं। यह भी सच है कि हम अब श्रेष्ठतम विचार प्राप्त करना चाहते हैं; इसलिए सदैव सार्थक बातें सोचना चाहिए नकारात्मक नहीं, क्योंकि आगे जाकर हमको वही मिलता है, जिसके लिए हमने इच्छा की थी।

कुछ लोग 'अगर ऐसा होता' का सिद्धांत अपनाकर चलते हैं और एक बार असफल हो जाने पर दोबारा प्रयत्न नहीं करते। ऐसे लोग यही कहते हैं—'अगर मैंने ऐसा किया होता तो' या 'अगर मैंने वैसा किया तो'। ऐसे लोग सिर्फ पश्चात्ताप करते हैं। वे दोबारा प्रयास के लिए कभी आगे नहीं आते, लेकिन इसके विपरीत सार्थक सोच वाला व्यक्ति इन व्यर्थ की बातों से दूर रहता है। वह अपनी पराजय के लिए बहाने नहीं ढूँढ़ता। वह सार्थक और मजबूत विचारों और इरादों का संबल लेकर आगे बढ़ता है।

वह अत्यंत ही आत्मविश्वासी व्यक्ति होता है। वह सदा सार्थक परिणामों को अपना लक्ष्य बनाता है। यदि उसे पराजय मिलती है तो भी वह हताश नहीं होता, बल्कि पराजय के कारणों का विश्लेषण करता है।

एक विचारक कहते हैं—"हमें आंतरिक विश्लेषण की कला सीखनी चाहिए और नकारात्मक विचारों को अपने दिमाग में नहीं आने देना चाहिए। कुछ विचार और अहंकार हमारे शत्रु होते हैं। इनसे बचने के लिए हमें आत्मविश्लेषण करते रहना पड़ता है।

"यदि हमने नकारात्मक विचार-प्रवाह को न रोका और वह चलता रहा तो हम अपना विनाश कर बैठेंगे। हमारे सामने हर तरह के विचार आते हैं, भलाई इसमें है कि हम उनमें से श्रेष्ठतम को अपने लिए चुनें।"

यह सच है कि जीवन को किस दिशा में मोड़ना है, यह हमारे विचारों पर निर्भर करता है। यदि हमने नकारात्मक दिशा पकड़ ली तो फिर हमारे विचार और कर्म भी नकारात्मक होंगे और उनके परिणाम भी निरर्थक निकलेंगे और यदि हम सकारात्मक दिशा ग्रहण करते हैं तो जीवन में आनंद का ठिकाना न होगा। सफलताएँ हमारे चरण चूमेंगी।

हम अनुभव करेंगे कि सकारात्मक विचारों में प्राय: असाधारण शक्ति प्रकट होती है। जिन कामों को हम असंभव समझते हैं, वे कैसे पूरे हो गए यह देखकर हम स्वयं चमत्कृत हो उठते हैं। इससे जीवन एक आश्चर्यजनक एवं संतोषजनक अनुभव बन जाता है।

अपनी तमाम विविधताओं के बावजूद जीवन अपने आप में बहुत अच्छा होता है। उसे बुरा तो हम अपने बुरे विचारों और बुरे कर्मों से बनाते हैं। दुर्भाग्यवश लोग जीवन के महान मूल्यों की पहचान नहीं कर पाते; क्योंकि उन पर बुरे विचारों के बादल घिरे रहते हैं। यदि वे जीवन के मूल्यों को समझें और जीवन से प्यार करें तो जीवन उनके लिए वरदान सिद्ध हो सकता है।

एक प्रेरक उदाहरण है—आप मधुमक्खी को देखिए, वह एक-एक फूल पर जाकर मधु लेती है और छत्ते में लाकर संचित करती है, वही मधु आपके लिए अमृत समान होता है। एक साधारण मक्खी गंदगी पर बैठती है। वह अपने साथ गंदगी और रोगों के कीटाणु लाकर मिठाई पर बैठती है। वह मिठाई खाकर हम बीमार पड़ जाते हैं। इसलिए सार्थक और सकारात्मक सोच का अभ्यास करना चाहिए।

नकारात्मक सोच को विष के समान त्याग देना चाहिए। इससे जीवन की दिशा स्वयं आलोकित हो उठेगी। सकारात्मक विचार अमृत के समान हमारा पोषण करते हैं। अत: सदैव इनका अभ्यास करना चाहिए। ❑

तीर्थंकर महावीर ने अपने दो कमंडलु एक साथ जलधारा में छोड़ दिए। एक के तल में छेद था तो दूसरा सही-सलामत था। छेद वाला कमंडलु डूब गया व दूसरा तैरता रहा।

तीर्थंकर अपने शिष्यों को समझाते हुए बोले—"ये जीवन, मुक्ति का द्वार भी हैं और पतन का भी। जो संयम अपनाते हैं वो तर जाते हैं-उसे न अपनाने वाले, डूबकर रहते हैं।"

स्मृति की सुवास

धरती ऐसी तपती है मानो धरती के तवे पर प्रकृति को भविष्य के लिए वर्तमान की रोटी सेंकनी हो। तभी आकाश में बादल आते हैं और जब वर्षा की पहली फुहार पड़ती है तो धरती महक उठती है एवं एक सुगंध उन्मुक्त होकर नाच उठती है। ऐसी कि मानो सुगंध के फूल चारों ओर खिल उठे हों, जिनके मुँह धोने के लिए मेघ अपना जल-भंडार उड़ेल रहे हों।

ऐसी महक की अनुभूति मन को आम के बाग में ले जाकर खड़ा कर देती है। फिर मन में कल्पनाएँ अँगड़ाई लेती हैं—वृक्ष बौर से लदे हैं, ऐसे जैसे महक अपने आँचल को लहराते हुए सारे बाग में नर्तन कर रही हो। फिर यादों के झोंके चलने लगते हैं, जब अतीत की मधुर स्मृति सजीव एवं जीवंत हो उठती है। जैसी सुगंध तपती धरती पर वर्षा की पहली फुहार ने उत्पन्न की थी, वैसी ही महक आम के बौर ने बाग में फैला दी थी।

सुगंध का यह विचित्र संसार है। वह कभी धरती पर अपने वैभव की गरिमा बहाती है और कभी वह शाश्वत या अनंत भी हो जाती है। धरती से वही मादक गंध आज भी उसी अंदाज में आती है; जिसे बचपन में महसूस करके हम सुध-बुध खो बैठे थे और जिस अंदाज को हमने गीतों के छंदों में पिरोए हुए देखा था। तपती धरा पर पड़ी पहली फुहार से उत्पन्न गंध और फूलों से उभरती महक और आम के बौर से निकलती सुगंध एवं आती सुवास तब याद आने लगती है। आखिर सुगंध का भी अपना एक संसार है।

वह भाँति-भाँति के रूप धारण करती है। सावन में कड़वे नीम पर जब निबौरी आ जाती है तो एक सुवास-सी निबौरियों से निकलकर कलरव करने लगती है। मन में ऐसे अनेक प्रश्न उठते हैं अनेक बार कि कड़वे नीम से जो सुवास निकलती है; उसमें कड़वापन क्यों नहीं, उसमें माधुर्य क्यों है और निबौरी में हलकी-सी मिसरी किसने घोल दी है?

हमें अपनी नासिका और अपने स्वाद पर संदेह होने लगता है, कहीं इनकी सुगंध ने हमें ठग तो नहीं लिया है, कहीं उन्होंने सुगंध से संबंध तो नहीं बना लिया है। वह सुगंध जो बचपन में मन में बाकी थी—इतने वर्ष बीत जाने पर उसकी स्मृति के साथ-साथ दिमाग में क्यों आ बसती है?

समय का वह सागर, जो अतीत और वर्तमान के मध्य ठाठें मार रहा है, सुगंध की अनुभूति की विस्मृतियों की गहरी वादियों में क्यों नहीं डूब पाया और कैसे वे आज भी अपने उसी ओज के साथ हमारे पास चली आती हैं, जिसके साथ वे बचपन में आई थीं।

एक फ्रिज जो नगर के एक शीत-गृह का छोटा संस्करण है—उसमें फल, सब्जियाँ, मक्खन और दूसरे खाद्य पदार्थ रख दिए जाते हैं। जो जब प्रयोग के लिए निकाले जाते हैं, उसी रूप में होते हैं, जिस रूप में रखे गए थे और शायद स्मृति भी एक ऐसा ही फ्रिज है, जिसमें अनुभूतियों, विचारों और भावनाओं का भंडारण किया जाता है और उन पर काल का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। जो हमारे मन में होता है, उसका स्मरण होते ही

उसकी वही आकृति सामने आती है, जो वर्षों पूर्व देखी थी।

इस वैचित्र्य पर विचारें कि समय स्मृतियों की मुट्ठी में कैद क्यों हो जाता है? हमने बचपन में जो देखा और गहराई से अनुभव किया—वर्षों बाद भी स्मृति में वह सजल कैसे हो उठता है? ऐसा इसलिए कि स्मृति का संबंध हमारी भावनाओं से जुड़ा रहता है।

भावनाएँ जितनी गहरी होती हैं, स्मृति उतनी तीव्र होती है। यह स्मृति का शीतगृह कैसा अद्भुत है कि इसमें दशाब्दियाँ व्यतीत हो जाने के बाद भी यादों के फूल मुरझाते नहीं और न ही उनकी सुगंध लुप्त होती है।

हमारी स्मरणशक्ति यदि एक शीतगृह के समान है तो हमारा स्मृति-भंडार एक ऐसा ही स्थान है, जिसमें घटनाएँ और उनके पात्र सहेज कर रख दिए गए हैं। उस शीतगृह में छत्रपति शिवाजी अभी भी जीवंत हैं, उसमें रखे चंद्रगुप्त अभी भी जवान हैं और महान भी। उसमें रखे पृथ्वीराज चौहान आज भी संयोगिता को उठाए घोड़े पर दौड़ रहे हैं और चित्तौड़ के लिए जूझते महाराणा प्रताप आज भी अपने गौरव को झुकने नहीं दे रहे हैं।

स्मृतियों के इसी शीतगृह से हम भावनाओं के माध्यम से पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी से जुड़ते हैं और अपने भटकते जीवन हेतु सम्यक दिशा को प्राप्त करते हैं। आवश्यकता है भावनाओं को सुदृढ़ता की, ताकि उनसे जुड़ी स्मृतियाँ हमारे व्यक्तित्व के विकास का आधार बन सकें। ❑

महाराज विक्रांत एक जंगल में भटक गए। भूख-प्यास से बेहाल थे। ऐसे में एक किसान ने उनको शरण दी, उनकी आवभगत की व उन्हें भोजन-पानी उपलब्ध कराया। कृतज्ञ राजा ने किसान से कहा—"जीवन में कभी किसी परेशानी में घिरो तो निस्संकोच मेरे पास आना, जो बन सकेगा करूँगा।"

कुछ महीनों पश्चात किसान को लगा कि अब ऐसी विषम घड़ियाँ आ गई हैं, जब महाराज से सहायता माँगने की आवश्यकता है। इस भाव से वह महाराज से मिलने पहुँचा। महाराज उस समय राजमंदिर में बैठे ध्यान कर रहे थे।

किसान ने द्वारपाल से पूछा—"महाराज अंदर क्या कर रहे हैं?" द्वारपाल ने कहा—"महाराज भगवान से कुछ माँग रहे हैं। यह सुनकर किसान को लगा कि जब महाराज भी भगवान से माँग रहे हैं तो मैं भी उनसे ही कुछ क्यों न माँगूँ?" महाराज ने किसान को लौटते देखा तो उन्होंने उसे रोका और आने व जाने का कारण पूछा। किसान ने उत्तर दिया—"महाराज, आया तो माँगने था, पर अब उसी शक्ति से माँगूँगा, जिससे आप भी माँगते हैं।"

पत्रकारिता में गंभीर पहल का समय

पत्रकारिता का लोकतंत्र के चतुर्थ स्तंभ के रूप में सदैव से ही महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। देश के स्वतंत्रता संग्राम में पत्रकारिता का योगदान उल्लेखनीय रहा। स्वतंत्रता से पूर्व विदेशी शासन के प्रति जनता को जागरूक करने तथा सांस्कृतिक संवेदना के जागरण में इसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्वतंत्रता संग्राम की पत्रकारिता ने अपने राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक जैसे विविध स्वरूपों के माध्यम से जनचेतना को झकझोरने व उन्हें प्रबुद्ध करने में निर्णायक भूमिका निभाई। स्वतंत्रता के बाद भी पत्रकारिता राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए सजग प्रहरी के रूप में खड़ी रही।

नवनिर्माण के प्रारंभिक दशकों में विकास पत्रकारिता के रूप में इसने अपना योगदान दिया। आपातकाल के दौरान सजग प्रहरी के रूप में इसकी भूमिका को देखा जा सकता है। इसी दौर में प्रिंटिंग तकनीकी में क्रांति के चलते प्रिंट माध्यम में पंख लग गए और गाँव-देहात तक पत्रकारिता की पहुँच सर्वसुलभ हो गई, जिसने जनचेतना के जागरण में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इसी दौर में प्रिंट के साथ इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में प्राइवेट चैनलों का आगाज हुआ, जिससे सूचना, मनोरंजन व शिक्षा के क्षेत्र में क्रांति का एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ। पत्रकारिता में तकनीकी एवं व्यवसाय में बढ़ते दखल के साथ इसका प्रभाव व्यापक हो गया, लेकिन साथ ही आजादी के दौर के पत्रकारिता मूल्यों का क्षरण भी तेजी से हुआ। पत्रकारिता में विज्ञापनों का प्रभाव बढ़ा तथा संपादकीय गरिमा का ह्रास हुआ।

अब संपादक सत्य व जनसरोकारों के पक्ष में खड़ा होने से अधिक चैनलों के व्यावसायिक हितों के भौंपू बन चुके हैं। डिजिटल माध्यम के साथ पत्रकारिता क्षेत्र में एक नया आयाम जुड़ा, इंटरनेट एवं स्मार्टफोन के साथ संचार क्रांति एक नए स्तर पर जनजागरूकता का माध्यम बनती गई।

विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म आज उसी के सशक्त माध्यम बने हुए हैं। फिर तीनों माध्यमों के सम्मिलन के साथ मीडिया का एक नया प्रारूप उभरा, जहाँ एक ही प्लेटफॉर्म पर हम तीनों माध्यमों का उपयोग एवं उपभोग कर सकते हैं और वो भी मोबाइल फोन पर, जो जनता को जागरूक व शिक्षित करने की असीम संभावनाओं से भरे हुए हैं। फिर जो माध्यम जितना सशक्त होता है, उसके दुरुपयोग की संभावनाएँ भी उतनी ही अधिक रहती हैं। यही इन जनसंचार माध्यमों का भी सत्य है।

प्रिंट माध्यम आज भी अपनी प्रामाणिकता को लेकर पाठकों को आश्वस्त करता है, लेकिन इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में प्रामाणिकता का संकट बना हुआ है, विशेष रूप में इस पर होने वाली बहसों में संवाद कम, विवाद अधिक दिखता है। फिर टीआरपी की होड़ में जनसरोकार वाला पक्ष कहीं पीछे छूट गया है।

इस सबके बावजूद कुछ बेहतरीन सकारात्मक चैनल जनशिक्षण का कार्य कर रहे हैं और कुछ सांस्कृतिक-आध्यात्मिक चेतना के संवाहक बने हुए हैं। डिजिटल माध्यम में दुरुपयोग की संभावनाएँ

और गंभीर एवं व्यापक हैं। फेक न्यूज से लेकर डीपफेक इसके स्याह पक्ष हैं। वायरल होने की सनक में ये माध्यम मूल उद्देश्यों से भटकते दिखते हैं।

ऐसे में व्यापक स्तर पर प्रशिक्षित पत्रकारों की आवश्यकता अनुभव होती है, जो अपने पेशेवर कौशल के साथ जीवनमूल्यों की भी समझ रखते हों। पिछले दिनों संपन्न महाकुंभ में, इसको कवर कर रही पत्रकारिता के स्वरूप के भी दिग्दर्शन हुए, जिसमें मीडिया का चाल-चलन और चरित्र बहुत कुछ उभरकर सामने आए। इस महाआयोजन को समग्रता में लोगों तक पहुँचाने की समझ सबके वश की बात नहीं दिखी।

एक तरफ मात्र इसका महिमामंडन करने तथा दूसरी ओर इसमें मात्र कमियाँ तलाशने की वृत्ति दिखी, जो उचित नहीं थी। किस तरह से 60 करोड़ लोगों की भीड़ का प्रबंधन किया गया, शोध का विषय था। महाकुंभ के आर्थिक विकास में भूमिका से लेकर इसके सांस्कृतिक-आध्यात्मिक चेतना के विस्तार में योगदान को लेकर कुछ पत्रकार सचेष्ट दिखे। शोधार्थियों का एक वर्ग इस तरह के तथ्यों पर अध्ययन को लेकर सचेष्ट था।

विदेशी मीडिया एवं प्रतिभागियों के लिए भी यह महाआयोजन एक कौतुक का विषय बना हुआ था। विश्व के इस सबसे बड़े समागम में हुई छिटपुट घटनाओं को बढ़ा-चढ़ाकर प्रस्तुत करना किसी जिम्मेदार पत्रकारिता का हिस्सा नहीं था। इस महाआयोजन में पधारे संत, महात्माओं एवं बाबाओं के साथ सार्थक संवाद एवं चर्चा की सामग्री भी इने-गिने पत्रकारों में ही दिखी।

अधिकांश तो टीआरपी और वीडियो को वायरल करने की होड़ में सतही व ऊलजलूल प्रश्न पूछते दिखे और फिर भ्रामक प्रचार करके जनता को और मूर्ख बनाते रहे। कितने तथाकथित यू-ट्यूबरों व आज के दौर के स्वयंभू पत्रकारों में धर्म, अध्यात्म और संस्कृति के आधारभूत तथ्यों तक का बोध नहीं दिखा।

बिना किसी सरोकार व परिपक्वता के अधिकांश तथाकथित पत्रकार वायरल कंटेट की खोज में अधिक दिख रहे थे। लगा कि पत्रकारिता के क्षेत्र में उचित प्रशिक्षण की आवश्यकता है। मुख्यधारा की पत्रकारिता में सकारात्मक पत्रकारिता का समावेश कैसे हो, इसके साथ सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक पत्रकारिता के अनछुए विषय पर उचित शिक्षण, प्रशिक्षण की आवश्यकता को कैसे पूर्ण किया जाए।

धर्म-संस्कृति प्रधान देश में इसका महत्त्व और बढ़ जाता है। यदि ऐसी कुछ व्यवस्था व्यापक स्तर पर हो सके, तो इसका प्रभाव दूरगामी होगा। पत्रकारिता में जवाबदेही एवं मूल्यों का समावेश समय की सबसे बड़ी माँग है। स्वतंत्रता संग्राम के दौर में परमपूज्य गुरुदेव ने सैनिक पत्र में इसी तरह की पत्रकारिता के मानक स्थापित किए थे। जो आगे चलकर अखण्ड ज्योति, युग निर्माण योजना, प्रज्ञा पाक्षिक जैसे प्रिंट मीडिया के अभिनव एवं युगांतरीय प्रयोग सिद्ध हुए।

इसी क्रम में शांतिकुंज का ईएमडी विभाग इलैक्ट्रॉनिक माध्यम से विचारक्रांति-अभियान को आगे बढ़ा रहा है और अपने डिजिटल प्रारूप में शांतिकुंज वीडियोज व विभिन्न सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म के रूप में उपलब्ध हैं, जहाँ सकारात्मक परिवर्तन के संदेशों को पढ़ा, जाँचा व देखा-सुना जा सकता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय का संचार संकाय व पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग

इस दिशा में अपने स्तर पर सक्रिय हैं। वर्ष-2005 के अपने स्थापनाकाल से ही यह परमपूज्य गुरुदेव के विजन के अनुरूप कार्य करते हुए संस्कार एवं कौशलयुक्त पत्रकारों की नई पीढ़ी तैयार कर रहा है। इसी तरह विश्वविद्यालय के विभिन्न संकाय एवं विभाग युगऋषि के चिंतन एवं युगदर्शन के अनुरूप अपने स्तर पर सक्रिय हैं।

इस समय युगऋषि के सपनों के देव संस्कृति विश्वविद्यालय में प्रवेश प्रक्रिया जारी है, जो सत्पात्र छात्र-छात्राओं का इंतजार कर रही है। सुपात्र छात्र-छात्राएँ इसमें आवेदन कर व इसकी प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण कर इस अभिनव प्रयोग का हिस्सा बन सकते हैं। विश्वविद्यालय ऐसे अभीप्सु विद्यार्थियों का भावभरा आवाहन करता है, जो जनसंचार के माध्यम से देश जगा सकें। ❑

गुरुकुल दीक्षांत समारोह भी हो गया, किंतु तीनों विद्यार्थियों को घर जाने की आज्ञा न मिली। वे सोचने लगे अब क्या बाकी है। सब कुछ तो पढ़-सीख लिया। वर्षों से घर नहीं गए, उन्हें याद सता रही थी। सायंकाल होते ही कहा—"तुम तीनों आज जा सकते हो।" जाने का नाम सुनकर बिना इंतजार किए शाम को ही चल पड़े। रास्ता पैदल का था। पगदंडी पकड़कर।

जंगल के रास्ते से जा रहे थे, किंतु गुरु ने पहले ही मार्ग में काँटेदार झाड़ियाँ बिछवा दी थीं। उनमें से एक विद्यार्थी ने पगडंडी का मार्ग छोड़कर रास्ता पार कर लिया। दूसरे ने छलाँग लगाकर काँटेदार मार्ग पार कर लिया।

तीसरा झाड़ियाँ हटाकर रास्ता साफ करने में लग गया। सोचा अँधेरे में दूसरे आगंतुक यात्री उलझेंगे बेचारों को बड़ा कष्ट होगा। साथी जिन्होंने रास्ता पार कर लिया था, वे बोले—"छोड़ो भी, जल्दी चलो अँधेरा होने वाला है।" तीसरा विद्यार्थी जो काँटे साफ करने में लगा था बोला—"इसीलिए और जरूरी है काँटे साफ करना कि कोई बेचारा अँधेरे में उलझकर न गिरे। तुम चलो, मैं पीछे से आता हूँ।"

अचानक झाड़ी में से गुरु प्रकट हुए व बोले—"जो दो आगे चले गए हैं, वे अंतिम परीक्षा में असफल रहे हैं, अभी उन्हें कुछ दिन गुरुकुल में और ठहरना होगा!" जिसने काँटे बीने थे, उसी की पीठ थप-थपाकर कहा—"तुम अंतिम परीक्षा में उत्तीर्ण हुए, तुम जा सकते हो।" गुरु ने कहा—"अंतिम परीक्षा पांडित्य की नहीं, औरों के लिए करुणा की थी।"

स्मार्टफोन का दुरुपयोग एवं उसका समाधान

जिस चीज को आदमी की बुद्धि क्रियान्वित नहीं करती, जो एक यांत्रिक कार्यप्रणाली पर आधारित हो, जिसका मनुष्य के निर्माण में योगदान कम और उसकी बहिर्चेष्टाओं में योगदान अधिक ही है, उस कार्यप्रणाली को हम नाम जो भी दे दें, वह मानव चेतना के उत्थान को समर्पित नहीं हो सकती। स्मार्टफोन ऐसी ही एक विधा है, जिसके द्वारा हम देश-विदेश की तमाम हलचलों से जुड़े रहते हैं, पर किसलिए?

मात्र इस.कारण कि उन खबरों से, उन बातों से हमारा तादात्म्य है, परंतु इस स्मार्टफोन की महामारी ने हमें कितना नुकसान पहुँचाया है, विशेषत: युवाओं को, उसकी तुलना में इसके लाभ कम ही दिखते हैं। जहाँ पर प्रयुक्त और प्रयोगकर्त्ता— दोनों एक अदृश्य क्रियासूत्र से संचालित हों एवं उनमें किसी प्रकार आत्मोत्थान की प्रेरणा का अभाव हो, उस अवस्था में वैचारिकी एवं कार्यप्रणाली में किसी प्रकार का संतुलन नहीं बैठ सकता है। स्मार्टफोन एक आवश्यकता है, पर अनिवार्यता नहीं। आप साधारण फोन से भी काम चला सकते हैं।

पढ़ाई के उद्देश्य से लिया है तो पढ़ाई को उसे समर्पित करिए। निर्धारित कर लीजिए कि जब पढ़ाई करेंगे तो उसे अपने पास रखेंगे और उसकी सभी अनावश्यक गतिविधियों को बंद कर देंगे। खेल-मनोरंजन के लिए रखा है तो पहले खेल का विवरण ज्ञात कर लीजिए। अखबार से या इंटरनेट के माध्यम से और फिर निर्धारित अवधि के लिए उसका उपयोग करिए। किसी अन्य कारण से, बातचीत के उद्देश्य से तो बढ़िया है, उसे किसी विशेष समय इसी के लिए प्रयुक्त करिए, साधारण बोलचाल की अपेक्षा ज्ञानवर्द्धक बातों का प्रयोग करिए।

दूसरी चीज है कि हम अपना तो संयम अपना सकते हैं, पर किसी जरूरी सूचना को हम तक पहुँचने में यह स्मार्टफोन ही तो माध्यम है और दिन भर सूचनाओं को इकट्ठा करते रहने से हमारा क्या लाभ हो सकता है?

इससे जुड़े रहने की बुरी आदत के कारण व्यक्ति जीवन में एक आंतरिक बेचैनी, अनमनेपन को लेकर के जीता है। हमें यह भी सीखना चाहिए कि झूठे बहकावों के कारण स्मार्टफोन हमें तनाव देने का माध्यम बन जाता है।

आदमी भोजन करता है, पर एक समय पर, बेसमय होकर के नहीं, उसे नींद आती है तो वह भी समय से, अपना आहार-विहार, रहन-सहन सब समय से हो तो ही बढ़िया रहता है। एक अनुशासित मन भीतर की अनुशासनहीनता को तो समाप्त करता ही है, साथ में बाहर जो कचड़ा फैला रखा है, उसे साफ करते उसे समय नहीं लगता। वस्तुत: भीतर का अनुशासन ही बाहर क्रियाविधि की एक निर्धारित शैली को विकसित करता है।

आदमी को जितने कम विचार आएँ, उतनी अच्छी और उतनी ज्यादा उसकी प्रगति होती है। कम विचारों को लागू करने में आसानी है, स्मार्टफोन और टीवी मीडिया से जो विचारों की अंध-दौड़ उमड़ पड़ती है, वह बहुत हानिकारक है। उससे बचे बिना प्रगति का कोई उपाय नहीं। आखिर यह आपका जैविक तंत्र ही तो है, कोई

मशीन नहीं कि इसमें मशीन की तरह सामान को लाद दिया जाए।

उत्कृष्टता अपनाने पर सब कुछ उत्कृष्ट ही दिखाई पड़ता है, निकृष्टता के पाले में एक भी चीज उपयुक्त नहीं। कमजोरियाँ शारीरिक-मानसिक ढाँचे के असंतुलन के कारण उभरती हैं। उन्हें दूर कर देने पर जीवन स्वयं संतुलित हो जाता है। वस्तुत: यह जो स्मार्टफोन है, यह सेवा के प्रकल्पों में उपयोग में लाना चाहिए।

व्यवहार का परिष्कार मन:स्थिति के उच्च गमन से होता है और मन:स्थिति एक बार ऊँची बना ली जाए, तो फिर अज्ञान और अंधकार की कोई जगह नहीं रह जाती। आज हम सब ज्यादातर इस अंधकार में ही डूबे हुए हैं कि हमको समाज से कुछ चाहिए, देने का भाव नहीं है लूटने की मनेच्छा है, कोई वाहवाही लूटता है, कोई धन-संपदा, कोई अपने अनुयायी बढ़ा करके राजनीतिक एजेंडा की पूर्ति करना चाहता है, किसी को विष फैलाना है तो किसी के लिए साधारण जीवन व्यतीत करना कठिन हो चला है।

आदत से मजबूर मानव इस तकनीकी का कितना अच्छा उपयोग कर पाएगा, यह तो समय ही बताएगा, परंतु यदि उसके अंदर विवेक की प्रस्थापना नहीं हुई तो सारी व्यवस्था धरी-की-धरी रह जाएगी, कोई वास्तविक विकास नहीं होगा। आदमी की मानसिकता नकारात्मक ही बनी रहेगी, इस अवस्था से उबरना है तो ज्ञान की चर्चा करिए, व्यक्ति को महान बनाने की विधा का सार-संक्षेप प्रस्तुत करिए, सोचिए-समझिए, जाँचिए-परखिए फिर अपनी आदतों का परिशोधन कर अपने जीवन का निर्माण करिए। इस स्मार्टफोन का उपयोग इसी उद्देश्य से करना श्रेष्ठ होगा। ❑

हातिम विदेश यात्रा पर निकलने लगे तो अपनी ईश्वरपरायण पत्नी से पूछने लगे—"मेरी अनुपस्थिति में तुम्हें भोजन इत्यादि की दिक्कत तो नहीं आएगी। तुम कहो तो तुम्हारे लिए खाने-पीने का सामान रख जाऊँ। कितना रख जाना उचित होगा?" उनकी पत्नी हँसकर बोली—"जितनी मेरी आयु हो, उतना रख जाइए?"

हातिम बोले—"तुम्हारी आयु मैं कैसे जान सकता हूँ?" उनकी पत्नी बोली—"तो जो मेरी आयु जानते हैं, उन्हीं परवरदिगार पर आप मेरी रोटी-पानी का इंतजाम भी छोड़ दीजिए?" उनके पति उनकी ईश्वर-आस्था पर अत्यंत मुग्ध होकर चले गए।

उनके जाने के बाद उनकी पड़ोसिन ने उनकी पत्नी से पूछा—"बेटी! तुम्हारे पति तुम्हारे लिए क्या व्यवस्था कर गए हैं?" हातिम की पत्नी बोली—"माँ! मेरे पति तो खाना खाने वाले थे, खाना देने वाला तो कण-कण में बैठा है। मेरी व्यवस्था तो अब भी वही कर लेगा।"

भावनात्मक लगाव का रहस्य

जब कभी कोई जड़ वस्तु अपनी इच्छाशक्ति से प्रेरित होकर कोई कार्य करने लगती है तो उसके पीछे कोई-न-कोई रहस्य अवश्य ही छिपा होता है। विज्ञान ऐसे तथ्यों को बेबुनियाद बताता है, किंतु इतिहास में घटित घटनाओं को कैसे नकारा जा सकता है ? इतिहास साक्षी है कि इस प्रकार की घटनाएँ एक नहीं, अनेक बार घटित हो चुकी हैं। ऐसी ही एक घटना के अनुसार लकड़ी तथा लोहे से बने एक समुद्री जहाज का नाम 'एस0एस0 हमबोल्ड' था, जो मालवाहक था। इस जहाज ने समुद्री यात्रा का प्रारंभ सन् 1898 से किया था।

अपने प्रारंभिक दौर में इस जहाज से यात्रा सीएटल से अलास्का के बीच हुआ करती थी। इस जहाज के कैप्टन का नाम था इलियाज जी0 बोफमन। जहाज के प्रारंभ होने के दिन से ही उन्हें जहाज के कैप्टन का भार सौंप दिया गया था। कैप्टन बोफमन ने अपना समुद्री जीवन भी हमबोल्ड से ही आरंभ किया था। आरंभ से लेकर अंत तक यह एक विचित्रता ही रही कि न तो किसी अन्य कैप्टन ने इस जहाज का कभी संचालन किया और न ही कैप्टन बोफमन ने किसी दूसरे जहाज का संचालन किया।

कुछ दिनों तक यह जहाज सीएटल बंदरगाह और अलास्का बंदरगाह के बीच चलने के बाद प्रशांत महासागर के उत्तर-पश्चिमी बंदरगाहों के बीच चलने लगा। कई बार जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पहुँच जाने के कारण इस जहाज को विघटित कर देने पर भी विचार किया गया, परंतु कैप्टन बोफमन के शालीन विरोध के कारण इस जहाज को विघटित नहीं किया जा सका।

अपना जल जीवन उसी जहाज से आरंभ करने के कारण कैप्टन बोफमन का उस जहाज से विशेष लगाव था। सन् 1934 में कैप्टन बोफमन ने जब नौकरी से अवकाश ग्रहण किया, तब हमबोल्ट को विघटित करने के लिए भेज दिया गया; क्योंकि किसी भी अन्य कैप्टन ने उस जर्जर हो चुके जहाज का कार्यभार स्वीकार कर खतरा मोल लेना उचित नहीं समझा।

अवकाश प्राप्त करने के बाद 8 अगस्त, 1935 के दिन कैप्टन बोफमन का कैलिफोर्निया में जिस समय निधन हुआ, ठीक उसी समय वहाँ से लगभग साढ़े छह सौ किलोमीटर दूर पेड़ो बंदरगाह पर खड़े हमबोल्ड जहाज के लंगर अपने आप खुल गए और वह उत्तर दिशा की ओर कैलिफोर्निया के लिए अपने आप रवाना हो गया।

इस जहाज को पेड़ो बंदरगाह पर विघटित करने के लिए लाया गया था और वहीं लंगर डालकर उसे खड़ा कर दिया गया था। अपने आप चलने वाले इस जहाज को देखकर पेड़ो बंदरगाह पर मौजूद लोग आश्चर्यचकित रह गए; क्योंकि बिना चालक ही वह जहाज अपनी दिशा में बढ़ने लगा था। लोग जब तक उस जहाज को रोकने का प्रयास करते, वह समुद्र में काफी भीतर पहुँच गया था। उस समय जहाज में कोई भी व्यक्ति नहीं था। बिना ईंधन ही वह जहाज समुद्र में यात्रा करता रहा। एक

अन्य कैप्टन की सहायता से उस जहाज को लगभग छह माह बाद वापस पेड़ो बंदरगाह में लाया जा सका था।

जहाज के अपने-आप चलने की घटना जाँच करने के लिए जाँच कमीशन को नियुक्त किया गया, परंतु नतीजा शून्य ही रहा। अंत में यही मानकर संतोष कर लिया गया कि कैप्टन बोफमन की आत्मा से इसका संबंध रहा हो। उसे अंतिम विदाई देने के लिए जहाज सारे लंगरों को तोड़कर बिना तेल-कोयले के अपने आप चल दिया था। इसी सीएटल बंदरगाह की एक और ऐसी ही घटना है।

कैप्टन मार्टिन ओलसेन नामक एक मछुआरा अनेक वर्षों से लीलायन नामक अपनी नौका की सहायता से साल्मन मछली का शिकार किया करता था। उसने जीवनपर्यंत अपनी उसी नौका से मछलियों का शिकार किया था। मार्टिन ओलसेन जब बूढ़ा हो गया और शिकार के लिए उसका जाना संभव नहीं हुआ तो उसने अपने पेशे से अवकाश ले लिया। मोहवश उसने अपनी प्रिय नौका को समुद्र तट से दूर बालू में निवास स्थान के निकट रख दिया।

दस वर्षों तक वह नाव खुले आकाश के नीचे रहने के कारण जीर्ण-शीर्ण होकर बालू में धँस गई थी। जिस दिन ओलसेन का देहांत हुआ, उस दिन समुद्र अपेक्षाकृत शांत था। किसी तरह का तूफान या ज्वार भी नहीं आया था, परंतु अप्रत्याशित रूप से वह नाव बालू से अपने-आप निकलकर समुद्र में चली गई और समुद्र में अपने-आप तैरने लगी। तीन दिनों तक वह नाव बिना किसी नाविक के समुद्र में घूमती रही और उसके बाद आयरलैंड के तट के निकट उस स्थान पर जाकर खड़ी हो गई, जहाँ ओलसेन को दफनाया गया था।

समुद्र में लहरें आती रहीं, किंतु वह नाव बिना किसी सहारे उसी स्थान पर बारह वर्षों तक खड़ी रही। ठीक बारह वर्षों के बाद उसी दिन जिस दिन ओलसेन का देहांत हुआ था, वह नाव पुनः समुद्र के रास्ते स्वयं ही चलकर उस स्थान पर पहुँच गई, जहाँ ओलसेन ने उसे रखा था।

इस घटना के बाद लोगों ने देखा कि ओलसेन का ताबूत उसी नाव के बीच में रखा था; जबकि ओलसेन को आयरलैंड के निकट दफनाया गया था। इन घटनाओं से पता चलता है कि व्यक्ति का लगाव जिस वस्तु से हो जाता है, वह मरने के बाद भी बना रहता है। शरीर तो छूट जाता है, लेकिन भावना यथावत् बनी रहती है और विभिन्न माध्यमों से अपनी उपस्थिति दर्ज कराती रहती है। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

बाल निर्माण का पावन दायित्व

बच्चों का लालन-पालन और निर्माण एक महत्त्वपूर्ण विषय है, जिसके प्रति माता-पिता को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। सामान्यतया अभिभावक इसके प्रति उदासीन देखे जाते हैं और लापरवाही के स्तर का व्यवहार करते देखे जाते हैं।

जाने-अनजाने में बाल निर्माण के प्रति बरती गई लापरवाही भविष्य में दु:खद एवं कष्टकारक दुष्परिणाम के साथ गहरे संताप का कारण बनती है; जबकि संतान की उत्पत्ति और उनका उचित लालन-पालन सूझ एवं सजगता की माँग करती है, जिसमें हुई चूक के कारण फिर पश्चात्ताप की अग्नि में जलने और अपनी लापरवाही के दंश को झेलने के अतिरिक्त कोई विकल्प शेष नहीं बचता।

समय रहते बाल निर्माण की दिशा में बरती गई सावधानी व दूरदर्शिता को समझदारी भरा कदम माना जाएगा, जिसमें हर सजग माता-पिता व अभिभावकों को प्रवृत्त होना चाहिए। इसके लिए सबसे पहले अपने बाल निर्माण के गुरुतर दायित्व का बोध आवश्यक है।

एक संतान के रूप में ईश्वर का दिव्य अंश घर आता है, जिसके विकास के लिए अपना श्रेष्ठतम प्रयास माता-पिता का पावन कर्त्तव्य बनता है। इसके लिए यह महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि घर का वातावरण अनुकूल हो, जिसके सुसंस्कारित एवं सुवासित परिवेश में संतान निर्बाध रूप से विकसित हो सके। कई माध्यमों से घर का वातावरण श्रेष्ठ बनाया जा सकता है। इस संदर्भ में माता-पिता का आपसी व्यवहार बहुत माने रखता है।

यदि दोनों का परस्पर व्यवहार, विश्वास, सम्मान एवं सद्भाव से भरा हुआ है तो संतान अवचेतन रूप से प्रभावित होती है और भावनात्मक विकास की सशक्त नींव पड़ जाती है। आगे चल कर ऐसी संतानें दूसरों के लिए संबल-सहारा बनते हैं और अपनी भावप्रवणता के साथ पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करते हैं और सृजनात्मक रूप में उल्लेखनीय योगदान देते हैं।

माता-पिता का कर्त्तव्य बनता है कि गृहस्थ जीवन को ऋषि-परंपरा के अनुरूप जिएँ। यह भोग के लिए नहीं है, बल्कि संतान उत्पत्ति एवं उनके विकास के साथ अपने कर्त्तव्य कर्मों को पूरा करने के उद्देश्य के लिए मिला हुआ एक दुर्लभ सुअवसर है। जीवन के अनुभवों को बटोरने व परस्पर भावनात्मक आदान-प्रदान के साथ जीवन यात्रा को पूर्णता के उच्चतर सोपान तक ले जाने की एक सीढ़ी है।

आश्चर्य नहीं कि भारतीय परंपरा में परिवार को श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। गृहस्थ आश्रम ही ब्रह्मचर्य आश्रम के लिए आश्रयस्थल बनता है। गृहस्थ आश्रम से ही वानप्रस्थ का मार्ग प्रशस्त होता है और संन्यास आश्रम की सशक्त नींव पड़ती है। परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी ने गृहस्थ को तपोवन की संज्ञा दी है और इसे नररत्नों की खदान माना गया है।

इस रूप में संयम, सेवा व सहिष्णुता जैसे सद्गुणों का अभ्यास करते हुए यह कर्मयोग साधना की पाठशाला बन जाता है, जिसमें सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होने पर अगले सोपानों की यात्रा तय होती है। गृहस्थ जीवन की यह समझ ही पारिवारिक जीवन का आध्यात्मिक आधार है, जिसके बल पर सहज रूप में बच्चों में श्रेष्ठ संस्कारों का बीजारोपण होता है।

माता-पिता के लिए आवश्यक हो जाता है कि वे बच्चों को समय दें। उनके हृदय के भावों को समझें, उनके जीवन की संभावनाओं को तलाशें, अभिव्यक्त होने के लिए आकुल उनकी प्रतिभा को निहारें और उसको विकसित होने का वातावरण दें। उसके लिए आवश्यक एवं उचित व्यवस्था जुटाएँ। उसके विकास के अनुकूल पाठ्यक्रमों वाले शिक्षण संस्थान में उनको प्रवेश दिलाएँ।

बच्चों के प्रथम गुरु तो माता-पिता ही होते हैं। इस भूमिका में वे अपने दायित्व को समझें। संयम, स्वाध्याय, सेवा और साधना के संस्कारों का बच्चों में बीजारोपण करने का प्रयास करें। माता-पिता की वाणी, व्यवहार और आचरण का संयम बच्चों को सहज रूप में संयमित बनाएगा। घर में स्वाध्याय और सत्संग के अभ्यास से उन्हें सहज रूप में श्रेष्ठ विचारों में रमण का वातावरण मिलेगा।

इस दौरान बोए गए विचार-बीज आगे चल कर न जाने किस रूप में फलित हों, कह नहीं सकते। ये पूरे जीवन की दिशा को तय करने वाले साबित होते हैं। सेवा का अभ्यास बच्चों के अहं का विगलन करता है और श्रम की गरिमा के साथ जीवन महानता के पथ पर अग्रसर होता है और फिर साधना तो जीवन की धुरी है।

घर में पूजा-पाठ, यज्ञ, संस्कार, प्रार्थना एवं ध्यान के व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयास इस दिशा में अद्‌भुत प्रयोग सिद्ध हो सकते हैं। सर्वोपरि बालक के जीवन में एक माली की भूमिका में रहें, जो नन्हे पौधे के पोषण, खाद-पानी की व्यवस्था करता हो, समय-समय पर छँटनी, निराई-गुड़ाई भी करता रहता हो। साथ ही आवश्यकता है कि बच्चों पर अपनी आशा-अपेक्षाओं का बोझ लादने की गलती न करें।

अमूमन अधिकांश माता-पिता यहाँ गलती कर बैठते हैं और अपने जीवन की अधूरी इच्छाओं, कामनाओं व महत्त्वाकांक्षाओं को जबरन बच्चों पर लादते देखे जाते हैं—जिसका दबाव बच्चों के तन, मन व आत्मा पर डालने से उन्हें तनाव से लेकर अवसाद में धकेल सकता है और अपने चरम पर किसी दुर्घटना का कारण भी बन सकता है।

आएदिन इस तरह की घटनाएँ इस समस्या की विकरालता से चिंतित करती हैं। माता-पिता अपनी समझदारी के साथ ऐसी अनहोनी घटनाओं को रोक सकते हैं। माता-पिता आपसी कलह, क्लेश से सावधान रहें। इसका बच्चों पर बहुत घातक प्रभाव पड़ता है और उनमें गृहस्थ आश्रम के प्रति गलत धारणा बनती है और वैवाहिक संस्था के प्रति मोह भंग तक की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। फिर जबरन गृहस्थ से जोड़ने का कोई औचित्य नहीं रह जाता।

बच्चों में यदि कहीं से नकारात्मक भाव पनप रहे हों या कोई अन्य दोष उभर रहा हो तो अपार धैर्य के साथ इनके परिमार्जन के लिए कार्य करें। बच्चों से बातचीत करें व उनकी आवश्यकताओं को समझने का प्रयास करें और समस्या को और विकराल बनाने के बजाय उसके उपचार का प्रयास करें। इस तरह माता-पिता समाधान का हिस्सा बन कर बच्चों के जीवन में नायक की भूमिका निभा सकते हैं।

माता-पिता बच्चों के पहले शिक्षक ही नहीं होते, बल्कि बच्चे माता-पिता से ही संस्कार सीखते हैं; जो चरित्र बनकर जीवनपर्यंत उनके व्यवहार का निर्धारण करता है।

अत: हर माता-पिता का पावन कर्त्तव्य बनता है कि बाल निर्माण के महत्त्वपूर्ण कार्य में अपने गुरुतर दायित्व को समझें व इसकी ओर समुचित ध्यान दें। ❑

ऋषितंत्र से साक्षात्कार

गंगोत्तरी से होते हुए गोमुख-तपोवन तक की पूज्य गुरुदेव की यात्रा का वर्णन विगत दो लेखों में हो चुका है। तपोवन पहुँचने पर यहाँ के संक्षिप्त प्रवास और फिर दादागुरु से साक्षात्कार एवं दुर्गम हिमालय की गुफा-कंदराओं में साधना कर रहे सूक्ष्म शरीरधारी ऋषितंत्र से साक्षात्कार का मार्मिक वर्णन यहाँ किया जा रहा है।

तपोवन में पहुँचने पर पूज्यवर ने दादागुरु द्वारा बताई गई गुफा में निवास किया तथा पास के बहते झरने में स्नान और संध्यावंदन का क्रम चलता रहा। यहाँ दादागुरु के दो प्रत्यक्ष उपहारों का वर्णन करते हुए, गुरुदेव लिखते हैं—जीवन में पहली बार ब्रह्मकमल और देवकंद देखा। ब्रह्मकमल ऐसा, जिसकी सुगंध थोड़ी देर में ही नींद कहें या योगनिद्रा, ला देती है। देवकंद वह, जो जमीन में शकरकंद की तरह निकलता है—सिंघाड़े जैसे स्वाद का।

पका होने पर लगभग पाँच सेर का, जिससे एक सप्ताह तक क्षुधा निवारण का क्रम चल सकता है। गुरुदेव के यही दो प्रत्यक्ष उपहार थे। एक शारीरिक थकान मिटाने के लिए और दूसरा मन में उमंग भरने के लिए। इसके बाद तपोवन पर दृष्टि दौड़ाई। पूरे पठार पर मखमली फूलदार गलीचा-सा बिछा हुआ था। तब तक भारी बरफ नहीं पड़ी थी। जब पड़ती है तब यह सभी फूल पककर अगले वर्ष उगने के लिए जमीन पर फैल जाते हैं।

नंदनवन में पहला दिन वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य को निहारने, उसी में परमसत्ता की झाँकी देखने में निकल गया। पता ही नहीं चला कि कब सूरज ढला और रात्रि आ पहुँची। परोक्ष निर्देश के अनुरूप समीपस्थ गुफा में सोने की व्यवस्था हुई, जिससे कि स्थूलशरीर पर शीत का प्रकोप न हो सके।

उसी रात दादागुरु से गुरुदेव की मुलाकात हुई। पूर्णिमा की रात थी। समूचा हिमालय चंद्रमा के सुनहले प्रकाश से आलोकित था। ऐसा लग रहा था कि मानो पूरा हिमालय सोने का हो। दूर-दूर बरफ के टुकड़े तथा बिंदु बरस रहे थे, जैसे कि मानो सोना बरस रहा हो। मार्गदर्शक के आ जाने से गरमी का एक घेरा चारों ओर बन गया।

गुरुदेव लिखते हैं, मैं गुफा में से निकलकर शीत से काँपते हुए स्वर्णिम हिमालय पर अधर-ही-अधर गुरुदेव के पीछे-पीछे उनकी पूँछ की तरह सटा हुआ चल रहा था। यात्रा का उद्देश्य पुरातन ऋषियों की तपःस्थलियों का दिग्दर्शन करना था। स्थूलशरीर सभी ने त्याग दिए थे, पर सूक्ष्मशरीर उनमें से अधिकांश के बने हुए थे। उन्हें भेदकर किन्हीं-किन्हीं के कारणशरीर भी झलक रहे थे। नतमस्तक और करबद्ध नमन की मुद्रा अनायास ही बन गई। आज मुझे हिमालय पर सूक्ष्म और कारणशरीरों से निवास करने वाले ऋषियों का दर्शन और परिचय कराया गया। मेरे लिए आज की रात्रि जीवन भर के सौभाग्यशाली क्षणों में सबसे अधिक महत्त्व की वेला थी।

आज का उद्देश्य दर्शन मात्र था। सो दादागुरु ने गुरुदेव को ध्यान-मुद्रा में बैठे सभी ऋषियों का एक-एक कर नाम बताया और सूक्ष्मशरीर का दर्शन करवाया। वार्त्तालाप किसी से कुछ नहीं हुआ। आज दर्शन मात्र प्रयोजन था। कुछ कहना और

सुनना नहीं था। उनकी बिरादरी में एक नया विद्यार्थी भरती होने आया, सो उसे जान लेने और जब जैसी सहायता करने की आवश्यकता समझे, तब वैसी उपलब्ध करा देने का सूत्र जोड़ना ही उद्देश्य था।

आज ऋषिलोक का पहली बार दर्शन हुआ। हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों, देवालयों, सरोवरों, सरिताओं का दर्शन तो यात्राकाल में पहले से भी होता रहा। उस प्रदेश को ऋषि निवास या देवात्मा हिमालय भी मानते रहे हैं, पर इससे पहले यह विदित न था कि किस ऋषि को किस भूमि से लगाव है। यह आज पहली बार देखा और अंतिम बार भी।

वापस छोड़ते समय मार्गदर्शक ने कह दिया कि इनके साथ अपनी ओर से संपर्क साधने का प्रयत्न मत करना। उनके कार्य में बाधा मत डालना। यदि किसी को कुछ निर्देशन करना होगा, तो वैसा स्वयं ही करेंगे। हमारे साथ भी तो तुम्हारा यही अनुबंध है कि अपनी ओर से द्वार नहीं खटखटाओगे। जब हमें जिस प्रयोजन के लिए जरूरत पड़ा करेगी, स्वयं ही पहुँचा करेंगे और उसकी पूर्ति के लिए आवश्यक संसाधन जुटा दिया करेंगे।

यही बात आगे से तुम उन ऋषियों के संबंध में भी समझ सकते हो जिनके कि दर्शन प्रयोजनवश तुम्हें आज कराए गए हैं। इस दर्शन को कुतूहल भर मत मानना, वरन समझना कि हमारा अकेला ही निर्देश तुम्हारे लिए सीमित नहीं रहा। ये महाभाग भी उसी प्रकार अपने सभी प्रयोजन पूरा कराते रहेंगे, जो स्थूलशरीर के अभाव में स्वयं नहीं कर सकते। जनसंपर्क प्रायः तुम्हारे जैसे सत्पात्रों—के माध्यम से कराने की ही परंपरा रही है। आगे से तुम इनके निर्देशनों को भी हमारे आदेश की तरह ही शिरोधार्य करना और जो कहा जाए, सो करने के लिए जुट पड़ना। मैं स्वीकृतिसूचक संकेत के अतिरिक्त और कहता ही क्या? वे अंतर्धान हो गए।

अगले दिन नंदनवन में दादागुरु के स्थूल शरीर से मुलाकात हुई और भावी रूपरेखा का स्पष्टीकरण हुआ, जिसमें गायत्री के चौबीस महापुरश्चरण से लेकर युगसाहित्य सृजन और भावी संगठन की रूपरेखा की चर्चा हुई। जिसके अंतर्गत 24 लक्ष गायत्री महामंत्र के 24 पुरश्चरण चौबीस वर्ष में पूरे करना, अध्ययन एवं युगसाहित्य का सृजन, स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी, साहित्य प्रकाशन द्वारा स्वाध्याय का और विशाल धर्म संगठन द्वारा सत्संग की व्यवस्था करना, ऋषि परंपरा का बीजारोपण और विश्वव्यापी जटिल समस्याओं का सूक्ष्म जगत् से निराकरण करना आदि सम्मिलित था।

नंदनवन में चार दिन के प्रवास के बाद गुरुदेव दादागुरु के निर्देश के अनुरूप गंगोत्तरी लौटे। दादागुरु अदृश्य हो गए और उनका दूत उन्हें गोमुख तक पहुँचा आया। गंगोत्तरी में बताए गए स्थान पर पूज्यवर ने निवास किया और वहाँ भागीरथी शिला-गौरीकुंड पर बैठकर अपना साधना क्रम आरंभ किया और एक वर्ष पूरा होने के उपरांत वापस लौटे।

प्रथम हिमालय यात्रा का सार-संक्षेप क्या रहा, गुरुदेव लिखते हैं कि इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि परिस्थितियों के अनुरूप मन को ढाल लेने का अभ्यास भली प्रकार कर लिया। इसे यों भी कह सकते हैं कि आधी मंजिल पार कर ली। इस प्रकार प्रथम वर्ष में दबाव तो अत्यधिक सहने पड़े, तो भी कच्चा लोहा तेज आग की भट्ठी में ऐसा लोहा बन गया, जो आगे चलकर किसी भी काम आ सकने के योग्य बन गया।

प्रथम हिमालय यात्रा का प्रत्यक्ष प्रतिफल एक ही रहा कि अनगढ़ मन हार गया और हम

जीत गए। प्रत्येक नई असुविधा को देखकर उसने नए बछड़े की तरह हल में चलने से कम आना-कानी नहीं की, किंतु उसे कहीं भी समर्थन न मिला। असुविधाओं को उसने अनख तो माना और लौट चलने की इच्छा प्रकट की, किंतु पाला ऐसे किसान से पड़ा था, जो मरने-मारने पर उतारू था। आखिर मन को झक मारनी पड़ी और हल में चलने का अपना भाग्य अंगीकार करना पड़ा।

उस प्रथम वर्ष में मार्गदर्शक ऋषिसत्ता के साक्षात्कार ने हमें आमूलचूल बदल दिया। अनगढ़ मन के साथ नए परिष्कृत मन का मल्लयुद्ध होता रहा और यह कहा जा सकता है कि परिणामस्वरूप हम पूरी विजयश्री लेकर वापस लौटे। ❑

स्वर्गीय डॉ० राजेंद्र प्रसाद, जो भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे, के जीवन की एक घटना है। बात है तो छोटी-सी, पर इस तथ्य की द्योतक है कि अध्यात्म जीवन-साधना से आरंभ होता है पूजा-पाठ से नहीं। हुआ यह कि सादगीपसंद राष्ट्रपति जी के पैरों में रात्रि को जब दरद होने लगा तो सचिव को पता चला कि उनके जूतों के तले इतने घिस गए हैं कि इनमें उभरी कीलें उन्हें चुभ रही हैं।

उन्होंने सचिव से कहा—"कल जूते नए मँगा लेंगे।" सचिव महोदय अगले दिन उन्नीस रुपयों के जूते खरीद लाए। कीमत पूछने पर राजेंद्र जी को धक्का लगा। बोले—"गतवर्ष तो ऐसे ही जूते बारह रुपये में लिए थे। इतनी कीमत तो नहीं बढ़नी चाहिए।"

सचिव ने कहा—"जी हाँ, कम कीमत वाले भी थे, पर वे कमजोर थे। यह जोड़ा अधिक मुलायम है।" राष्ट्रपति का उत्तर था, मेरे पैर तो कम कीमत वाले कड़े जूतों के अभ्यस्त हैं। अतः इन्हें लौटाकर वापस वही मँगा दें। जैसे ही सचिव लौटाने जाने लगे तो वे बोले—"जितना रुपया खरीदने में बचाओगे, उतना कार में जाकर पेट्रोल में खरच कर दोगे। किसी आने-जाने वाले के हाथ बदलवा लेना।" बात छोटी-सी थी, पर राष्ट्र की संपत्ति की एक-एक पाई का ध्यान रखने वाले राजेंद्र बाबू के लिए तो छोटी-सी बात भी गंभीर थी।

वृद्धावस्था पर यौगिक प्रभाव

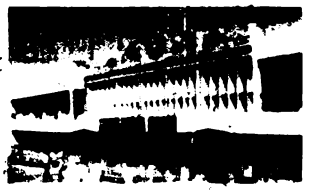

वृद्धावस्था प्राणिजगत् की एक कठिन सच्चाई है। सभी के जीवन की परिणति इस अवस्था को प्राप्त करती है। व्यक्ति, समाज कोई इससे अछूता नहीं रह सकता। वृद्धावस्था में होना तथा इसके संबंध में सोचना—दोनों भिन्न पहलू हैं। कुछ लोग इस अवस्था को नकारात्मक रूप से कमजोर, कष्टदायी समझते हैं तो कुछ लोग सकारात्मक दृष्टि से स्वतंत्रता, स्वच्छंदता और आनंद की स्थिति मानते हैं।

वस्तुत: उम्र के 60 वर्ष के पश्चात से वृद्धावस्था प्रारंभ हो जाती है और इसमें जीवन के अंतिम पड़ाव को संकेतित करने वाले क्षयात्मक परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगते हैं। शरीर, मन, प्राण, ऊर्जा—सब में निरंतर कमजोरी आने लगती है और अनेक समस्याएँ व रोग शरीर व मन को घेर लेते हैं।

चूँकि यह परिवर्तन एक जटिल और क्रमिक प्रक्रिया है, अत: ऐसे में बाहरी व आंतरिक सहयोग एवं सकारात्मकता की नितांत आवश्यकता होती है। बाहरी सहयोग में परिवार व समाज में वृद्धों के प्रति सम्मान और देख-भाल करने वाला परिवेश तथा आंतरिक रूप से उनमें उत्पन्न भीतर की अशांति, भटकाव, चंचलता, कुंठा आदि से बचाव को गिना जा सकता है।

आंतरिक सहयोग में तो बहुत हद तक वृद्धावस्था को प्राप्त व्यक्ति स्वयं ही अपने को कुछ रचनात्मक व अन्य गतिविधियों में व्यस्त कर समाधान प्राप्त कर सकता है। प्राचीनकाल में वानप्रस्थ के भाव को संभवत: वृद्धावस्था की इन्हीं चुनौतियों के सकारात्मक व कल्याणकारी समाधान के रूप में हमारे ऋषियों ने खोज निकाला था।

वर्तमान में बढ़ते वृद्धाश्रमों की संख्या इस पक्ष की कमियों-समस्याओं को स्पष्ट कर देती है कि वृद्धों को बाहरी रूप से अवहेलना का शिकार होना पड़ रहा है। ऐसे में स्वाभाविक रूप से उनके जीवन में अनेक विसंगतियाँ और समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं और वृद्धावस्था एक अभिशाप की तरह हो जाती है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में वृद्धावस्था की समस्याओं के समाधान का संयुक्त पद्धति, युवावस्था की पूर्व तैयारी तथा मानसिक चुनौतियों की पहचान कर उनके समुचित समाधान की खोज के उद्देश्य से एक विशिष्ट शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है। वर्तमान संदर्भ में यह निश्चित ही अत्यंत महत्त्वपूर्ण और उपादेयी प्रयास है।

यह शोधकार्य वर्ष—2022 में योग विज्ञान एवं मानव चेतना विभाग के अंतर्गत शोधार्थी अनिता पांडा द्वारा विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण तथा डॉ० सुरेश लाल वर्णवाल के निर्देशन और डॉ० संतोष विश्वकर्मा के सह-निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

इस शोध का विषय है—**'कतिपय यौगिक अभ्यासों का वृद्धाश्रम तथा सामान्य समुदाय में रहने वाले वृद्धों के समायोजन स्तर, मृत्युचिंता तथा आत्महीनता-असुरक्षा स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन।'** शोधार्थी द्वारा अपने इस प्रयोगात्मक एवं तुलनात्मक विवेचन

विधि पर आधृत अध्ययन के प्रयोग कार्य को संपन्न करने के लिए उत्तराखंड राज्य के हरिद्वार शहर में स्थित आर्य वानप्रस्थ आश्रम तथा रानीपुर मोड़ के आबादी क्षेत्र को चयनित किया गया।

कोटा प्रतिचयन एवं साधारण यादृच्छिक प्रतिचयन का उपयोग कर प्रयोग हेतु कुल 240 वृद्धों का चयन किया गया, जिनकी आयु 60 से 75 वर्ष के मध्य थी। इन चयनितों में 120 वृद्धाश्रम के महिला एवं पुरुष वृद्ध तथा सामान्य समुदाय के 120 महिला एवं पुरुष वृद्ध सम्मिलित किए गए। इन सभी को समान रूप से प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित—दो समूह में रखा गया। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी का शोध उपकरणों की सहायता से स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

परीक्षण में जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया गया वे हैं—

(i) शमशाद हुसैन तथा जसबीर कौर (1995) द्वारा निर्मित वृद्धावस्था समायोजन इन्वेन्ट्री,

(ii) गिरिधर प्रसाद ठाकुर तथा मंजू ठाकुर (1984) द्वारा निर्मित ठाकुर मृत्युचिंता मापनी तथा

(iii) स्वयं शोधार्थी द्वारा निर्मित आत्महीनता-असुरक्षा मापनी।

परीक्षण के उपरांत शोधार्थी द्वारा एक माह की अवधि तक प्रयोगात्मक समूह को नियमित शोध प्रयोग की चयनित प्रक्रियाओं का अभ्यास कराया गया। 40 मिनट के इस अभ्यास सत्र में योगाभ्यास की विशिष्ट तकनीकों को सम्मिलित किया गया।

शोध में जिन यौगिक तकनीकों को प्रयोग हेतु चयनित किया गया, वे हैं—

(i) प्रज्ञायोग साधना (आत्मबोध, तत्त्वबोध, भजन, मनन) 20 मिनट,

(ii) नाड़ी शोधन प्राणायाम, 10 मिनट,

(iii) सोऽहम् ध्यान, 05 मिनट तथा

(iv) ॐ उच्चारण, 05 मिनट

इन सभी तकनीकों का अभ्यास स्वयं शोधार्थी द्वारा अपने निर्देशन एवं मार्गदर्शन में संपन्न कराया गया। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति पुनः सभी चयनितों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। दोनों परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में शोधार्थी द्वारा यह पाया गया कि योगाभ्यास का वृद्धों के जीवन में समायोजन स्तर, मृत्यु चिंता तथा आत्महीनता-असुरक्षा स्तर पर सकारात्मक एवं सार्थक प्रभाव पड़ता है। अध्ययन के परिणामों में तुलनात्मक रूप से विश्लेषण करने पर यह भी पाया गया कि वृद्धाश्रम में रहने वाले वृद्धों में समायोजन स्तर, मृत्यु चिंता व आत्महीनता-असुरक्षा का स्तर सामान्य समुदाय के वृद्धों की तुलना में अधिक होता है।

उल्लेखनीय है कि शोध परिणाम के रूप में जो सकारात्मक एवं सार्थक शोध निष्कर्ष प्राप्त हुआ है, उसके पीछे का मुख्य कारण शोधार्थी द्वारा चयनित योगाभ्यास की विशिष्ट योग तकनीकें हैं। ये सभी तकनीकें स्वतंत्र रूप से योग-साधना के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान एवं प्रभाव रखती हैं। इनके सम्मिलित प्रभाव से ही शोध परिणामों में सार्थकता की उपलब्धि संभव हो सकी है।

इन यौगिक विधियों का साधना जगत् के अतिरिक्त भी वैज्ञानिक एवं चिकित्सीय महत्त्व हैं। जैसे प्रज्ञायोग साधना व्यक्ति के विचारों में सकारात्मकता एवं सजगता उत्पन्न करने वाली प्रभावी विधि मानी जाती है। इसका प्रभाव समान रूप से शरीर एवं मन, दोनों पर पड़ता है। पूज्य गुरुदेव द्वारा प्रवर्तित यह ऐसी साधना-विधि है, जो व्यक्ति के मन को अंतर्मुखी बनाकर उसके चिंतन, भावना एवं व्यवहार में सकारात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ है।

विभिन्न शोधों से यह प्रमाणित है कि मानसिक एवं आत्मिक शोधन के लिए प्रज्ञायोग के चार

प्रमुख अभ्यास सम्मिलित किए गए हैं—आत्मबोध, तत्त्वबोध, भजन और स्वाध्याय। वृद्धावस्था में आत्मबोध की साधना अपने अस्तित्व व लक्ष्य के प्रति सचेत कर स्वबोध कराने में सहायक होती- जिससे वृद्धजन कुछ नया एवं रचनात्मक कार्य के लिए प्रेरित होते हैं तथा आत्महीनता व असुरक्षा की भावना से मुक्त रहते हैं।

तत्त्वबोध की साधना मृत्युभय से मुक्ति प्राप्त करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है, भजन एवं मंत्रजप विचारों में शुद्धता तथा संतुलन उत्पन्न करते हैं तथा स्वाध्याय से वृद्धावस्था में बिखरी हुई मनोभावनात्मक ऊर्जा केंद्रीभूत होने लगती है और जीवन में नई ऊर्जा का अनुभव आता है। साथ ही मनोविकारों का शमन भी हो जाता है। इसी प्रकार प्रज्ञायोग की अन्य साधना तकनीकें भी महत्त्वपूर्ण लाभ प्रदान करती हैं।

अध्ययन की दूसरी यौगिक तकनीक नाड़ीशोधन प्राणायाम है। इसके नियमित अभ्यास से मन धीरे-धीरे शांत होता है तथा मानसिक समस्याएँ दूर होने लगती हैं। शांतिपूर्ण मन:स्थिति में आत्म जागरूकता, आत्मनियंत्रण व आत्मसम्मान में वृद्धि होती है।

इसके साथ ही स्नायु तंत्र को प्रभावित कर शारीरिक क्रियाशीलता व ऊर्जा को भी बढ़ाने में यह कारगर उपाय माना गया है। तनाव को कम करने में भी इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

अगले क्रम में सोऽहम् ध्यान की विधि प्रयुक्त की गई है। यह मनोरोगों के प्रबंधन में प्रभावी तकनीक कही जाती है। इसके अभ्यास से शारीरिक व मानसिक विश्रांति तथा मनोभावनात्मक स्थिरता प्राप्त करने में अत्यंत सहायता मिलती है। साथ ही चिंता, निराशा, अवसाद जैसे विकार भी शांत होते हैं।

ॐ उच्चारण की विधि इस शोध के योगाभ्यास की अंतिम तकनीक है। यह शारीरिक स्तर में रक्त संचरण तंत्र पर सकारात्मक प्रभाव डालने वाली प्रभावी विधि कही जाती है, साथ ही संज्ञानात्मक स्वास्थ्य को संतुलित एवं विकसित बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसमें परमात्मा के प्रति समर्पण की भावना भी जुड़ी है। जिसके अभ्यास के फलस्वरूप मृत्यु की चिंता, आत्महीनता जैसे मनोविकार शांत हो जाते हैं।

उक्त योगाभ्यास की सभी तकनीकें विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण हैं। इस शोध में उनके प्रयोग एवं परिणाम के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि वृद्धावस्था की समस्याओं के प्रबंधन में योगाभ्यास एक अत्यंत कारगर उपाय है। इसके नियमित अभ्यास से वृद्धावस्था की चुनौतियों एवं समस्याओं का मजबूती से सामना कर जीवन के अंतिम पड़ाव को सम्यक सार्थकता प्रदान की जा सकती है। ❑

सद्भावैश्च सुराम्यना: सत्कर्मनिरताश्च ये।
आत्मानस्तुल्यरूपास्ते ज्ञेमास्तु परमात्मन: ॥

अर्थात जो काम सद्भाव से प्रेरित होकर किए जाते हैं, वे ही फलित होते हैं। कर्म-साधनारत व्यक्ति ही देवमानव कहलाते हैं और परमात्मसत्ता का अनुग्रह तथा जनसम्मान पाते हैं।

विवेकशून्य स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की सोलहवीं किस्त)

[श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के पंद्रहवें श्लोक पर चर्चा विगत किस्त में की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मनुष्य शरीर, वाणी और मन के द्वारा शास्त्रविहित अथवा शास्त्रविरुद्ध जो कुछ भी कर्म प्रारंभ करता है, उसके ये पाँचों हेतु होते हैं। इससे पूर्व के श्लोक में श्रीभगवान ने उन पाँचों हेतु या साधनों का उल्लेख किया है, जो कर्म की सिद्धि का आधार होते हैं। यहाँ भगवान कृष्ण उसी वचन को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि कर्म चाहे शुभ हों या अशुभ हों, नीतिसंगत हो या अनीतिपूर्ण हों—उनको क्रियान्वित करने के पाँच ही साधन हैं।

सामान्यतया संसार में कर्म को शरीर से करने पर ही कर्म माना जाता है, परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर, मन और वाणी—सभी माध्यमों से कर्म घटित होता है। जैसे, सांसारिक दृष्टि से एक व्यक्ति हत्या का दोषी तब माना जाएगा, जब वह उसे करे, परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से व्यक्ति ऐसे विचार मन में रखने पर या ऐसे वचन मुख से कहने पर भी इनका दोषी हो जाता है। यहाँ भगवान कृष्ण ये ही सत्य कहते हैं कि कर्म उचित हो या अनुचित, नीतिसंगत हो या अनीतियुक्त—उसे करने के साधन मात्र वो ही पाँच हैं, जिन्हें उनके द्वारा इससे पूर्व के श्लोक में बताया गया है।]

अर्जुन को यह स्पष्ट कर देने के बाद भगवान कृष्ण अगला श्लोक कहते हैं कि—

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥*16*॥

शब्दविग्रह—तत्र, एवम्, सति, कर्तारम्, आत्मानम्, केवलम्, तु, यः, पश्यति, अकृतबुद्धित्वात्, न, सः, पश्यति, दुर्मतिः।

शब्दार्थ—परंतु (**तु**), ऐसा (**एवम्**), होने पर भी (**सति**), अशुद्ध बुद्धि होने के कारण (**अकृतबुद्धित्वात्**), उस विषय में यानी कर्मों के होने में (**तत्र**), केवल शुद्ध स्वरूप (**केवलम्**), आत्मा को (**आत्मानम्**), कर्ता (**कर्तारम्**), समझता है (**पश्यति**), वह (**सः**), मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी (**दुर्मतिः**), यथार्थ नहीं समझता (**न, पश्यति**)।

अर्थात ऐसे पाँच हेतुओं के होने पर भी जो उस (कर्मों के) विषय में केवल शुद्ध आत्मा को कर्त्ता देखता है, वह दुर्गति ठीक नहीं देखता है; क्योंकि उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं अर्थात उसने विवेक को महत्त्व नहीं दिया है। यहाँ श्रीभगवान अर्जुन को स्पष्ट करते हैं कि चौदहवें सूत्र में जिन पाँच कारकों का, साधनों का उल्लेख उन्होंने किया था—उन सभी कारकों में कर्त्ता ही मुख्य कारक है।

श्रीभगवान ने गीता में पहले कहा भी है (3/27) की अहंकार के कारण ही जीवात्मा स्वयं को कर्त्ता या भोक्ता मान बैठता है (**अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।**) जबकि आत्मा का वास्तविक स्वरूप तो साक्षी का ही है। यहाँ भगवान अर्जुन को स्पष्ट कर रहे हैं कि कर्म सिद्धि के पाँच कारण होते हुए भी, जो संस्कारहीन होते हैं, दुर्मति होते हैं, वो स्वयं को ही कर्त्ता मानने लगते हैं (**कर्तारं पश्यति**) और फिर ऐसा व्यक्ति यथार्थ से अपरिचित रह जाता है।

ऐसा व्यक्ति फिर इस सत्य को भूल जाता है कि इस संसार की समस्त क्रियाएँ वस्तुत: प्रकृति के द्वारा ही होती हैं। भगवान ने गीता में पहले कहा भी है कि **गुणा गुणेषु वर्तन्ते**—अर्थात प्रकृति के गुण ही परस्पर क्रिया कर रहे हैं और आत्मा कर्त्ता नहीं है। जो द्रष्टा होता है, सत्य स्वरूप से परिचित होता है, वह प्रकृति के गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्त्ता नहीं मानता है (**नान्यं गुणेभ्य: कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति**— *14/19*)

ऐसे व्यक्ति के लिए जो स्वयं को कर्त्ता मानकर के बैठ गया है, उसके लिए भगवान कृष्ण कहते हैं कि उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है (**अकृत बुद्धित्वात्**)। ऐसा इसलिए कि वह विवेकशून्य हो गया है और यह भूल गया है कि आत्मा तो कभी कर्त्ता थी ही नहीं। जो विवेकी पुरुष होते हैं वो न तो कर्त्ता बनते हैं और न ही कर्मफल से लिप्त होते हैं (**न करोति न लिप्यते,** *गीता—13/31*)। इसीलिए भगवान कहते हैं कि जितने भी कर्म होते हैं वो पाँच हेतुओं से होते हैं और उनमें भी अहंकार से मोहित अंत:करण वाला स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है। (क्रमश:)

शिष्यों ने अपनी जिज्ञासा संत विद्रुथ के सम्मुख व्यक्त की व बोले—''महाराज! ईश्वरपरायण भक्तों को जीवन में इतना कष्ट उठाना पड़ता है?'' संत विद्रुथ बोले—''वत्स! जो ईश्वर पर विश्वास करते हैं, वे उसके बनाए कर्मफल विधान पर भी विश्वास करते हैं। अत: वे जीवन में विषम समय आने पर विचलित नहीं होते। सन्मार्ग पर चलते हैं और ऐसे समय में ईश्वर के सामीप्य को और सघनता से अनुभव करते हैं। ऐसे में वे न अनिष्ट की बात सोचते हैं और न एकाकी होने की बात सोचकर हताश होते हैं। भक्त याचना व कामना नहीं करते, वरन अपनी क्षुद्रता को ईश्वर की महानता में विलीन करने का सौभाग्य स्वीकार करते हैं। ऐसे में उनका जीवन कष्टकारी न रह कर, सौभाग्यशाली बन जाता है।''

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

सौभाग्यशाली वसंत

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों में एक अलौकिक भाव समाहित है। वे न केवल मानवीय भावनाओं को झकझोरने का कार्य करते हैं वरन वे श्रोताओं को उस पथ पर चलने के लिए प्रेरित भी करते हैं, जिस पर बढ़ने के बाद मानवीय उत्कर्ष की संभावना साकार हो पाती है। अपने एक ऐसे ही विशिष्ट उद्बोधन में वंदनीया माताजी सभी गायत्री परिजनों को स्मरण दिलाते हुए कहती हैं कि वसंत पंचमी का यह सौभाग्यशाली दिवस पूज्य गुरुदेव का आध्यात्मिक जन्मदिवस भी है और माँ सरस्वती के अवतरण का दिवस भी। ऐसे पावन अवसर पर हर परिजन को पूज्य गुरुदेव से मिले अनुदानों का स्मरण कर स्वयं को उसी रंग में रँग लेने की तैयारी कर लेनी चाहिए, जिस रंग में पूज्य गुरुदेव ने स्वयं को रँगा। वंदनीया माताजी स्मरण दिलाती हैं कि यदि हमारे भीतर श्रद्धा, निष्ठा और विवेक जाग्रत हो जाए तो हमारे ही भीतर से एकलव्य, अर्जुन और शिवाजी का प्राकट्य संभव है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

सौभाग्यशाली वसंत

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।'

बेटियो और हमारे आत्मीय प्रज्ञापुत्रो! आज बड़े हर्ष और खुशी का दिन है कि आज हमारे और आपके मार्गदर्शक का जन्मदिन है। यों तो शरीर का जन्मदिन क्वार (आश्विन) के महीने में मनाया जाता था, लेकिन वो जन्मदिन नहीं है। असली जन्मदिन तो आज है, जो आज से 60 वर्ष पूर्व वसंत पर्व से आरंभ हुआ। उनके जीवन में वसंत आया था, हरियाली आई थी, गुरु की चेतना आई थी और गुरु का प्रकाश आया था। उसी दिन को हम जन्मदिन मानते हैं और उसी को हम मनाते आए हैं और उसी के लिए आज आप और हम एकत्रित हैं। मनाने के लिए एक जन्मदिन और दूसरा भगवती माँ सरस्वती का अवतरण वसंत पंचमी और तीसरा आज 26 जनवरी, देखो कैसा सुयोग कि तीनों मिल गए। कभी-कभी ऐसा योग आता है। तो मैं क्या कह रही थी? मैं ये कह रही थी कि आज आपके और हमारे मार्गदर्शक का जन्मदिन है।

बेटे! वे आपको सामने दिखाई नहीं पड़ रहे हैं, मैं मानती हूँ, लेकिन आप भावनाओं से पास में पाएँगे यह मैं जानती हूँ। दरद और पीड़ा किसको कहते हैं? मैं समझती हूँ। मैं बड़ी भावुक महिला हूँ, अभी भी कहती हूँ कि वो अभी भी मेरे साथ हैं।

छाया के तरीके से आगे भी हैं और पीछे भी हैं, और सामने भी हैं, लेकिन बेटे! जब मैंने ऊपर से नीचे की ओर पाँव रखा तो न मालूम क्यों जाने किस कोने में और जाने कहाँ से मेरी भावुकता उभर आई और मैं रोक नहीं सकी और मैं यहाँ भी आप लोगों के समक्ष भी नहीं रोक सकी। मुझको रोकना चाहिए था।

चूँकि भावुकता ही सब कुछ नहीं होती है। भावनाएँ उससे ज्यादा होती हैं और जब भावनाएँ होती हैं तो मनुष्य कुछ करने के लिए आगे बढ़ता है और कोरी भावुकता हो तो ढोल जैसे आँसू बहाते रहो, आँसू से कोई बात बनेगी नहीं बेटे! यदि हम उन्हें अपना सच्चा मार्गदर्शक मानते हैं, आप अपना मार्गदर्शक मानते हैं तो आपको उनके साथ जुड़ जाना चाहिए।

मिला गुरु का अनुदान अपार

बेटे! हमने अपने को जोड़ लिया और एक साल के इस सूक्ष्मीकरण तप में हमको सिद्धांत मिला और हमने उसको व्यावहारिक स्वरूप दिया। लोग कहते हैं, हमारे परिजन कहते हैं, अन्य भी कहते हैं कि माताजी! आपने क्या देखा और क्या पाया? बेटे मेरा एक लड़का कह चुका है, अन्य आपको कहते रहे हैं, लेकिन आज मैं दिल खोल करके आपके सामने कह रही हूँ कि मैंने जीवन में क्या देखा, क्या सुना और क्या पाया। मैंने ही नहीं, लाखों ने, लाखों ही नहीं करोड़ों ने पाया।

बेटे, मैं तो आपके सामने एक उदाहरण के रूप में बैठी हूँ, सच्चे हृदय से आप बताइए कि आपको मिला कि नहीं मिला। अभी मेरे बालक गा रहे थे—'मिला गुरु का अनुदान अपार'। अरे गुरु का तो अनुदान मिलता रहा, लेकिन हम सँभाल कहाँ पाए। जिसने पाया और जिसने सँभाला, वो निहाल हो गया। जिसने अपने गुरु के आदर्शों के लिए अपने शरीर को गला दिया। जो आदेश हुआ, जो निर्देश हुआ पूरे मन से और पूरे तन से उसी में लगा दिया। न बीबी को देखा, न बच्चों को देखा, लेकिन फर्ज और कर्त्तव्य तो बेटे जरूर जिंदा रहे हैं। वो तो अभी भी विद्यमान हैं, लेकिन उसमें लपटे नहीं रहे।

अपने गुरु के आदर्शों और आदेशों में अपने को लगा दिया, झोंक दिया, अपने को दाँव पर लगा दिया। उन्होंने कहा कि बेटे हमको चाहिए तेरी अक्ल। उन्होंने कहा लीजिए गुरुदेव। उनने कहा कि ले बेटे, ले तू मेरी शक्ति ले। उन्होंने कहा कि गुरुदेव मैं आपको सब कुछ देने के लिए तैयार हूँ। मैं अपना सर्वस्व देता हूँ।

उत्थायोत्थाय बोद्धव्यं
किमद्य सुकृतं कृतम्।
आयुषः खंडमादाय
रविरस्तं गमिष्यति॥

अर्थात प्रातःकाल उठते ही यह सोचना चाहिए कि मुझे आज क्या करना है, क्या सत्कर्म मैंने किया है; क्योंकि प्रतिदिन आयु का एक भाग क्षीण हो जाता है।

मैं तो कहती हूँ कि चौबीसों घंटे उन्हीं के लिए समर्पित हैं। आप कहेंगे कि किंवदंती है। माताजी तो वैसे ही भावुक हो रही हैं। कुछ कहेंगे कि उनकी अर्धांगिनी हैं, उनकी पत्नी हैं, इसलिए अपने पति की शेखी बघार रही हैं। बेटे, मैं शेखी

नहीं बघार रही हूँ। उन महिलाओं में से मैं नहीं हूँ। मैं तथ्य की बात कहती हूँ।

सच्ची गुरुभक्ति

उनकी उपासना चौबीस घंटे चलती है। हाँ सो जाते हैं तो मैं उसे भी उनकी उपासना ही कहूँगी। मैं उसको भी कहूँगी। जितनी देर सो जाते हैं, उतने गुनहगार हैं। बाकी का? बाकी का बेटे सारा-का-सारा जीवन विश्व मानव के लिए, अपने गुरु के लिए लगा दिया। इतनी सच्ची गुरुभक्ति तभी सार्थक होती है, जब हम गुरु के लिए और गुरु के मार्ग पर चलेंगे तो हमारी गुरुभक्ति सार्थक है, नहीं तो बेटे निरर्थक हो जाएगी, उपासना भी हमारी निरर्थक हो जाएगी व एकांगी हो जाएगी, सर्वांगपूर्ण नहीं हो सकती।

कैसे हो जाएगी जरा मुझे बताइए। एक कोने में आप माला ले करके बैठ भी जाएँ, आपका उद्धार भी हो जाए, मैं समझती हूँ चलो हो जाए तो इतने व्यक्तियों में से, करोड़ों की संख्या में से एक घट गया, एक की हो गई मुक्ति तो बाकी का क्या होगा? बाकी के पूरे संसार का क्या होगा? सारे विश्व का क्या हुआ और हमारे राष्ट्र का क्या होगा?

राष्ट्र के लिए सोचे वही संत

बेटे! राष्ट्र के लिए जो चिंतन करता है, विश्व के लिए जो चिंतन करता है, वही संत है। उसी को संत कहेंगे, उसी को ऋषि कहेंगे और जो अपने लिए ही जीता है, अपने लिए ही खाता है, अपने बीबी-बच्चों के लिए जीता है, वो तो पशु योनि है। पशु अपने लिए जीता है, अपने बच्चों के लिए जीता है और अपने परिवार के लिए जीता है। बस खतम। बाकी हमारे जीवन को क्या हुआ?

बेटे! हमारा जीवन यों ही बेकार चला जाता है। जैसे हम आए थे—'मुट्ठी बाँधकर आया बंदे हाथ पसारे जाएगा।' जब आते हैं तो मुट्ठी बाँध कर आते हैं और जाते हैं तो संसार से यों ही चले जाते हैं। धन-दौलत, बीबी-बच्चे सारे-के-सारे यों ही धरे रह जाते हैं। हमारा कोई साथ देता है क्या? साथ तो हमारा अपना आपा ही दे सकता है, जो कि हमारे संस्कारों के रूप में होता है। वही इस लोक और परलोक में भी हमारा साथ देता है।

बेटे! पिछली बार मैंने एक उदाहरण दिया था। एक बंदरिया का दिया था। ध्यान नहीं है बकरी का था या एक बंदरिया का था। मैं आपको संस्कारों की बात बताती हूँ। एक बंदरिया थी तो उसके पिछले जन्म के जो संस्कार थे, वो मनुष्य जैसे संस्कार थे। तो बकरियों का जो झुंड था और उसका जो मालिक था, वह गड़रिया था।

गड़रिया उसको पकड़ लाया और जब उसकी हरकतें देखीं तो वहाँ का जो व्यापारी था, उस व्यापारी के यहाँ उसको ले गया। उसके यहाँ भी कुछ ऐसा ही व्यापार था। भैंसों का, कुछ भेड़ों का, कुछ काहे का, कुछ काहे का, तो उसने जब देखा कि इस बंदरिया का जो विचित्र संस्कार है वह कैसे है? उन्होंने कहा कि इसको देखना चाहिए। तो वहाँ जा पहुँचे जहाँ गड़रिया रहता था। उसके यहाँ भेड़ों की छुट्टी कर दी। तो अब जो बंदरिया थी, उन भेड़ों को चराने को ले गई और ढूँढ़कर लौटा भी लाई।

देखती रही कि कहीं कोई रह तो नहीं गई। उसमें से कोई एक रह गई तो वो ढूँढ़कर ले आई और वहीं लाकर खड़ा कर दिया, जहाँ उन्हें बँधना चाहिए था, रहना चाहिए था। क्या बात हो गई? वो तो थी बंदरिया और वो थी भेड़। बेटे ये पूर्वजन्मों के संस्कार थे, जो उसको अगले जन्म में मिले। थी तो सही बंदर की योनि, लेकिन संस्कार जो होते हैं वो जन्म-जन्मांतरों तक चलते हैं।

हमारे ऊपर है गुरु का ऋण

बेटे! इस जन्म में हमारे भी कुछ ऐसे ही संस्कार हैं। हमारे और आपके ऊपर भी ऋण हैं और संस्कार भी हैं। संस्कार इस माने में हैं कि उनसे हम जुड़े हैं, उस बाजीगर से जुड़े हैं, जो न मालूम क्या-क्या बना देता है? कोई तर्क-वितर्क भी कर सकते हैं, लेकिन मैं तो अपना ही उदाहरण बताती हूँ। बेटे! मेरे मुँह से आज तक किसी ने दो शब्द नहीं सुने होंगे कि जो आज मैं इस स्थिति में बैठी हूँ किसकी बनाई हुई हूँ। बेटे उस बाजीगर की, जिससे हम जुड़े हैं और आप लोगों को किसने बनाया है?

बेटे उसी ने बनाया, उसी ने दिशा और धारा दी है। हमको और आपको तो पका-पकाया मिल गया है। हमको पकाना नहीं पड़ रहा है। साहित्य के रूप में जो आग उन्होंने पैदा की है, हमारे और आपके लिए तैयार करके वो महल बनाकर रखा है। ये तो ईंट और पत्थर का है। बेटे वो जान, वो फिजा और वो हवा और वो करुणा और वो दरद किसका बनाया हुआ है? जनता जिस दरद में कराह रही है, मानवता पुकार रही है कि आइए, आइए हमारा दुःख-दरद बँटाइए, कोई सुनने वाला नहीं है।

बेटे! ऐसा संत आपके और हमारे जीवन में आया जिसने कि इतने दिन 75 वर्ष की आयु, अपना सारा जीवन दाँव पर लगा दिया, लेकिन अब भी हमारी और आपकी आँखें न खुलें तो बेटे आपको भी और हमको भी धिक्कार है। जिसके साथ हम जुड़े, जिसको हमने गुरु कहा और हमने उसको पति कहा, भगवान कहा। हमने पति पीछे कहा, पहले हमने भगवान कहा, क्योंकि हमें अपने अंदर विश्वास है।

रंग दे वसंती चोला

हमने उनका हर क्रियाकलाप एक भगवान के रूप में ही देखा। आइए हमसे शिक्षा लीजिए, देखिए उनके जीवन से और हमारे जीवन से। हमारे से नहीं, उनके जीवन से पढ़िए जो भगवान साथ-साथ है। आप तो कहने दीजिए बेटे, गुरुजी भगवान हैं और उस भगवान का आज जन्मदिन है। आइए हम और आप मन से भावभरी श्रद्धांजलि दें, मन से बेटे, तन से नहीं। अभी-अभी मेरे बच्चों ने गाया था 'रंग दे वसंती चोला'। बेटे! चोले को रँगिए, मन को रँगिए, कपड़े को चाहे रँगिए या चाहे मत रँगिए।

पंडित रामानुज वैराग्य विषय पर व्याख्यान दे रहे थे। प्रवचन सुन रहे एक गृहस्थ के मन में प्रश्न उभरा और उसने पूछा—"प्रभु! क्या कोई ऐसा मार्ग नहीं है, जिसमें संसार छोड़ना भी न पड़े और मैं भगवान को भी पा लूँ।"

रामानुज मुस्कराए और बोले—"वैराग्य बाहर के संसार से भागने का नाम नहीं, बल्कि भीतर के संसार को त्यागने का नाम है। संसार में रहते हुए सद्भावनाओं के साथ सुकर्म करो और अर्जित पुण्य, परमात्मा का समझकर उन्हीं के अंशों में वितरित कर दो। अनासक्त कर्म भवबंधनों से मुक्ति और प्रभुप्राप्ति का साधन बनता है।

एक बार मन से तो सही श्रद्धांजलि दीजिए, पैसे से नहीं। बेटे हमको पैसे नहीं चाहिए, रख

अपने पैसे। हमको चाहिए आपकी भावना। हमको चाहिए आपकी निष्ठा और हमको चाहिए आपकी श्रद्धा, जिसके बल पर हमें वो महल तैयार करना है, जो श्रद्धा और निष्ठा के ऊपर टिका होता है। सारे मानव जाति के लिए, सारे विश्व के लिए और सारे राष्ट्र के लिए आप लोगों से हमें जो काम कराना है, वह तभी संभव है, जब आपकी श्रद्धा सच्ची है तभी मैं कहूँगी कि आप भक्त हैं।

जो आप चिंतन कर रहे हैं, अपने पेट में मलाल भी कर रहे हैं, दुःखी भी हो रहे हैं कि गुरुजी की एक झलक हमको दिख जाए तो हम धन्य हो जाएँ। बेटे आपके अंदर तो गुरुजी ने वो बीज बोया है, यदि आप दिग्दर्शन कर सकें, अपने गले में मुँह डाल सकें तो मैं समझूँगी कि आपने गुरुजी के दर्शन कर लिए। गुरुजी आपके हृदय में कब से हैं। हमारे कितने ही परिजन जो तीस-तीस साल, चालीस साल, पचास साल से हमसे जुड़े हुए हैं। अभी तक आपका पेट नहीं भरा, आपने दर्शन नहीं किए, तो मैं समझती हूँ जिंदगी में कभी होने वाले भी नहीं हैं, कभी होंगे भी नहीं। आप खाली हाथ आए हैं और खाली हाथ ही जाएँगे।

बेटे! गुरुजी चार बार अपने गुरु के पास कुछ क्षण के लिए गए और सारा-का-सारा जीवन गुरु के आदर्शों पर चले। गुरु का काम किया और जो माँगा सो दिया। गुरु ने माँगा? हाँ बेटा माँगा। सो दिया। उन्होंने कहा कि माँगना क्या है? ऐसे लंबे लंबे हाथ-पाँव हैं, अक्ल है, हम कमा लेंगे और खा लेंगे। पत्नी हमारी बीमार है तो क्या पत्नी के लिए माँगेंगे? हमको नहीं चाहिए। गुरुदेव! होना होगा तो ठीक हो जाएगी, नहीं मर जाएगी, हजारों मर जाते हैं और मर भी गई तो क्या हो जाएगा? बच्चे हैं ठीक हो जाएँगे, नहीं होंगे तो क्या? बच्चों के लिए क्या माँगना। देना है तो हमें वो शक्ति, वो सामर्थ्य, वो अक्ल दीजिए, जिससे हम जन-उपयोगी बन सकें, जनता के लिए जी सकें।

जापान के गांधी

जापान के गांधी कागावा थे। जैसे अपने हिंदुस्तान में महात्मा गांधी थे, वैसे ही जापान में गांधी कागावा और उनकी पत्नी थीं। उन्होंने कहा कि जनता के लिए, इन कोढ़ियों के दरद के लिए हमको समर्पित होना है और उनकी जो पत्नी थीं, उन्होंने कहा कि हमें आप से पहले समर्पित होना है।

अरे तुम तो धनवान की बेटी हो, तुम हमारे साथ कैसे रह सकोगी? उन्होंने कहा कि इस धन को धिक्कार है, यह साथ जाने वाला नहीं है। मेरा परिवार, मेरा स्वामी और मेरे देवर और जेठ जो कुछ भी हैं वही हैं, जिसके बीच में आप सेवा कर रहे हैं और मेरी यह भावना है कि मैं भी सेवा करूँ तो इससे सौभाग्यशाली और कौन हो सकता है। बेटे वही हूबहू उन्होंने अपने जीवन में धारण किया है।

आप जानते नहीं हैं कि अलगाव कितना दुःखद होता है, बिछड़न कैसी पीड़ा देती है। आप बच्चों की आँखों में आँसू देखते हैं तो आप क्या ऐसा समझते हैं कि गुरुजी को अच्छा लग रहा होगा। ऐसा नहीं हो सकता। वो करुणा की मूर्ति हैं। बेटे! उनको माँ भी कह लें तो कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि माँ का जैसा उनका दिल उदार करुणा से भरा-पूरा है। क्या उनको ये नहीं होगा कि हम अपने बच्चों की एक झलक देखें या बच्चों से हम मिलें, पर बेटे जो संकल्प लिया है, जो लक्ष्य है, उस लक्ष्य तक हमको पहुँचना है, उद्देश्य की पूर्ति हमको करनी है, वो हमारा मुख्य ध्येय है।

बेटे! तुमको तो माँ भी सँभाल लेगी। अभी लड़का कह रहा था—'माँ का प्यार-दुलार'....अरे बेटे तुम्हें तो मैं अपनी छाती से लगा लूँगी, लेकिन

जो विश्वहित के लिए लग रहे हैं वो कौन करेगा? उनको करने दीजिए, उनके काम में आप रोड़ा मत अटकाइए। नहीं साहब! हम तो बड़े भावनाशील हैं, बेटे! आप अपनी भावनाशीलता को रखो। भावनाशील हैं तो आप काम आइए, हाथ बँटाइए, काम करिए। किन का हाथ बँटाएँगे? गुरुजी का हाथ? अरे बेटे तू गुरुजी के हाथ क्या बँटाएगा? हमने तेरे कंधों पर जो वजन रखा है, तू उसको सँभाल, उनके गुरु ने उनको काम सौंपा है। उन्होंने कहा कि गुरुदेव! सौंपिए, आप सौंपेंगे, हम काम करेंगे।

बेटे वही उद्देश्य आपका होना चाहिए, जो आपके कंधों पर वजन डाला गया है, जो आपको सौंपा गया, उसका निर्वाह आपने किया कि नहीं किया। किया है तो आपकी गुरुभक्ति पक्की है और आपने नहीं किया तो मैं समझूँगी कि बस ये वाचाल हैं या तो यों कह दूँगी कि चलिए ये मेरे बच्चे हैं। बच्चे कैसे? छोटे-छोटे से। जिनमें कोई विवेक नहीं होता। अरे माताजी! छोटे-छोटे से बैठे हैं, इसमें से कोई 70 साल का, कोई 60 साल का, कोई 50 साल का और कोई 25 साल का है। आप कह रहे हैं कि बच्चे हैं।

हाँ बेटे! बुद्धि की दृष्टि से वे मेरे बच्चे ही तो हैं। जो माँ कह रहे हैं, वे मेरे लिए बालक हैं। मैं सोचूँगी कि मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं, जिनको कोई अक्ल नहीं है, जिनको कोई जानकारी नहीं है, जो अबोध हैं, ये बालक हैं। मैं आपको बालक कहूँगी। वो तो नहीं कहूँगी, कर्कशता तो मेरी वाणी में नहीं है, लेकिन यह जरूर कहूँगी कि मेरे बच्चों को अक्ल नहीं है। यदि अक्ल होती, विवेक होता और सिद्धांत होते तो अपने गुरु के तईं बेटे जैसे वो मर-मिटने की तैयारी करते हैं, आप भी ऐसा ही करते कि गुरुदेव हम साथ हैं।

जगाएँ अपनी श्रद्धा

रामकृष्ण परमहंस को एक विवेकानंद मिला था, जो सारे संसार में चमक गया और अपने गुरु को भी चमका दिया। उसने अपने गुरु को चमका दिया और हमको लो, 1000 तो यहीं बैठे हैं। मैं समझती हूँ कि 1000 से ज्यादा बैठे हैं। विवेकानंद की कमी है क्या? कोई कमी नहीं है बेटे हाथ-पाँव वही हैं, वही आप सबके हैं। हाथ भी उनके दो थे, आँखें भी दो थीं, कान भी दो थे, पाँव भी दो थे, फिर आपमें क्या कमी है? आपमें सिर्फ कमी है तो केवल सिद्धांतों की कमी है, निष्ठा की कमी है, और श्रद्धा की कमी है और आपके अंदर कोई कमी नहीं है।

यदि श्रद्धा आ जाए, निष्ठा आ जाए और हमारा विवेक जाग्रत हो जाए, तो बेटे तुममें से जाने कौन-कौन एकलव्य हो सकता है और कौन-कौन आप में से क्या-क्या हो सकता है, अर्जुन हो सकता है और शिवाजी हो सकता है, जानें कौन-कौन हो सकते हैं? लेकिन हाय रे! उस क्षुद्रता के लिए हम क्या करें? वो जीवन में से नहीं जाती है। उस क्षुद्रता को हम हटा नहीं पाते, उस संकीर्णता को हटा नहीं पाते।

बेटे, यदि संकीर्णता जीवन में से हट जाए, तो आप इस संसार के लिए, राष्ट्र के लिए और सारे विश्व के लिए कितना काम कर पाएँगे? सब साक्षर हो जाएँगे। दहेज का जो दानव है, वो कहीं जिंदा रह जाएगा क्या? बेटे नहीं रहेगा। जब अपने यहाँ लड़की होती है तो हम ऐसे गौ बन जाते हैं, बिलकुल दीन और जब लड़का होता है तो हम बब्बर शेर जैसे हो जाते हैं कि बस, बकरी आई और हमने खाया। अब खा ही जाएँगे बेटी वाले को, इसको नहीं छोड़ेंगे जिंदा।

क्यों छोड़ेंगे ? हमारे यहाँ बेटा जो हो गया, तेरे यहाँ क्या हो गया, बेटे को मोल दे रहा है। बेच रहा है, अपने बेटे को ? फिर कैसे रह सकता है ये। दहेज का दानव मर करके ही रहेगा और जो भी हमारे समाज में कुरीतियाँ हैं वो बेटे हट करके ही रहेंगी। एक भी कुरीति नहीं रह सकती है, लेकिन बेटे वो जरूर रहेंगी, क्योंकि आप जो दीन-हीन बने बैठे हैं, हीनता की ग्रंथि पाले बैठे हैं। आप कुछ करना नहीं चाहते, करना चाहें तो बहुत कुछ कर सकते हैं।

अरे देखो एक ने! आचार्य जी ने कितना किया है, एक अकेले ने किया है और आप इतने हैं। चलिए मैं यह कहूँगी कि अकेले ने इतने को बनाया तो उनका सहयोग मिला। चलिए पहले तो आपको बनाया गया न। कुम्हार के तवे में जब बरतन तप जाता है तो काम का हो जाता है और तपता नहीं है तो जो भी उसमें डालेंगे, वो नीचे से निकल जाएगा, वो बरतन गल जाएगा। तो आपको कुम्हार के अवे में पहले तपाया गया और बनाया गया और खींचा गया। अंतर बस अब इतना ही है, थोड़ा-सा ही फरक है। कितना फरक है ? कोई फरक नहीं है। हम तर्क चाहे जितना दे सकते हैं, लेकिन भावनाओं से शून्य हैं। हमारे अंदर भावनाएँ आ जाएँ तो वो करुणा, वो दया आपके अंदर आ जाएगी। फिर आप अकेले घर में बैठ करके नहीं खा सकेंगे। दुखियारों की ओर देखेंगे और जो मानवता पीड़ा और पतन से कराह रही है, हाथ फैलाए बैठी है और कह रही है, पुकार रही है, उसकी सेवा-सहायता के लिए चल पड़ेंगे।

(समापन अगले अंक में)

चार संत प्रवास पर जा रहे थे। रास्ते में सुनसान पड़ा। विश्राम के लिए उन्होंने एक पेड़ के नीचे डेरा डाला। क्षेत्र जोखिम भरा था। इसलिए निश्चय किया गया कि एक-एक प्रहर चारों जगें और अन्य तीन सोयें। इस प्रकार सुरक्षा भी होती रहेगी और नींद लेने की सुविधा भी बनी रहेगी। पेड़ पर एक यक्ष रहता था। वह नीचे ठहरने वालों को मल्ल युद्ध की चुनौती देता था और हराने पर उनका सारा सामान छीन लेता था । उस दिन भी यही हुआ।

पहले वाले को चुनौती देने पर वह घबरा गया और भय से काँपने लगा। उसका सारा सामान छिन गया और एक कोने में बिठा दिया गया। दूसरे-तीसरे की भी यही गति हुई। चौथा आत्मविश्वासी एवं प्रसन्नचित्त था।

उसने चुनौती स्वीकार करते हुए कहा—"दोस्त तुम अच्छे आ गए। प्रातःकाल कसरत करने में सहायता देने वाला और कोई था भी नहीं। आओ हम लोग जोर आजमाई करें। एकदूसरे से कुछ सीखें और आगे के लिए दोस्ती का सिलसिला बढ़ाएँ।"

यक्ष का क्रोध शांत हो गया। क्रोध ही उसकी शक्ति थी। उसके उभरने का चौथे राहगीर ने अवसर ही न आने दिया। सवेरा होते-होते यक्ष थक कर चूर हो गया। उसने अन्य तीनों से लूटा हुआ सामान भी वापस कर दिया और प्रेमपूर्वक विदाई दी। हँसमुख रहना विजय की निशानी है।

रामकथा में तीर्थकथा

शांतिकुंज परिसर में संध्याकालीन नवरात्र की कक्षाएँ श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी द्वारा ली गईं। इस बार के चैत्र नवरात्र में रामकथा में जिस विषय का चयन किया गया, वह था— '**रामकथा में तीर्थकथा व तीर्थयात्रा**'। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने रामचरितमानस की रामकथा में संतों को, महापुरुषों को चलता-फिरता तीर्थ कहा है—

मुद मंगलमय संत समाजू।
जो जग जंगम तीरथराजू॥

और साथ ही रामकथा में अनेकों तीर्थों की पावनता व महत्ता को बताया गया है, जिसमें से रामकथा से संबंधित नौ महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थलों की तीर्थकथा पर नवरात्र के नौ दिनों में विशेष उद्‌बोधन दिया गया। तीर्थ शब्द का अर्थ है—पवित्र करने वाला। तीर्थों के तीन स्वरूप पाए जाते हैं—

(1) **नित्य तीर्थ**—जिसे किसी ने बनाया नहीं है, जो पहले से ही विद्यमान है।

(2) **भगवती तीर्थ**—जहाँ पर भगवान का अवतार हुआ, जैसे—अयोध्या, मथुरा आदि तीर्थ स्थान और

(3) **संत तीर्थ**—जहाँ पर जीवनमुक्त संतों, भक्तों, ऋषियों ने तप-साधनाएँ संपन्न कीं, जहाँ पर उनका निवास रहा। इस दृष्टिकोण के साथ संपूर्ण धरती को लेकर यदि विचार करें, तो हमारी भारतभूमि, हमारा भारत देश अपने आप में एक तीर्थ है; क्योंकि ये समूची धरती का परम पावन आध्यात्मिक क्षेत्र और आध्यात्मिक केंद्र है।

गोस्वामी जी के तीर्थयात्रा के प्रसंग जितने बाहरी हैं, उतने ही आंतरिक हैं।

गोस्वामी जी ने तीर्थयात्रा की तीन दृष्टियाँ रखी हैं—एक भौतिक स्वरूप की दृष्टि, एक दैविक स्वरूप की दृष्टि और एक आध्यात्मिक स्वरूप की दृष्टि। ये तीनों स्वरूप प्रत्येक तीर्थ में उभर करके आए हैं।

1. प्रथम दिवस : तीर्थस्थल—तीर्थराज प्रयाग (अकथ अलौकिक तीरथराऊ)— गोस्वामी जी जब प्रयाग की महिमा, प्रयाग का महत्त्व बताते हैं, तो हमारे सामने तीन दृष्टियाँ स्पष्ट करते हैं। उनकी पहली दृष्टि है—महर्षि भरद्वाज की दृष्टि—तत्त्व दृष्टि व ऋषि दृष्टि; जिसमें महर्षि भरद्वाज, ऋषि याज्ञवल्क्य के समक्ष अपनी जिज्ञासा रखते हैं और उस जिज्ञासा के फलस्वरूप ऋषि याज्ञवल्क्य उनको राम का तत्त्व समझाते हैं।

दूसरी दृष्टि है—भगवान श्रीराम की दृष्टि—कृपादृष्टि और कृपादृष्टि में प्रभु श्रीराम ने देखा—प्रयाग राजाधिराज हैं और वो भगवान की ही भाँति सब पर कृपावृष्टि करते हैं।

इसके बाद तीसरी दृष्टि है—भरत जी की दृष्टि—भक्त की दृष्टि। भरत जी भावनाओं से विभोर होकर प्रयागराज की ओर देखते हैं, उनको देख करके स्वयं त्रिवेणी बोल उठती है—

भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी।
भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥

और भरत, प्रयागराज से याचक की तरह वरदान माँगते हैं और कहते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि,
गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद,
यह बरदानु न आन॥

मुझे न अर्थ की इच्छा है, न धर्म की, न काम की और न ही मैं मोक्ष चाहता हूँ। जन्म-जन्म में मेरा श्रीराम जी के चरणों में प्रेम हो, बस, यही वरदान माँगता हूँ, दूसरा कुछ नहीं।

(2) द्वितीय दिवस : तीर्थस्थल—कैलास (परम रम्य गिरिबरु कैलासू)—यह महादेव व माता पार्वती का निवासस्थान है। कैलास अति उत्तम व अति पवित्र शिखर है, यह नित्य तीर्थ है। गोस्वामी जी कहते हैं—कैलास पर्वतों में श्रेष्ठ है और रमणीय है, जहाँ शिव और पार्वती जी सदा निवास करते हैं, योगियों के लिए, योगीजनों के लिए सहस्रार चक्रं कैलास शिखर है—जहाँ परमेश्वर स्वरूप में कुंडलिनी शक्ति के साथ संयुक्त रूप में भगवान शिव मिलते हैं।

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी जी ने कैलास के प्रति दो दृष्टियों के स्वरूप हमारे सामने रखे हैं—एक कैलास का स्वरूप वह है, जिसमें भगवान शिव-शक्ति से विलग हैं, अखंड समाधि में हैं—

लागि समाधि अखंड अपारा।

और दूसरा स्वरूप वह है, जिसमें भगवान शिव माता पार्वती के साथ कुंडलिनी शक्ति के साथ संयुक्त हैं।

इन दो दृष्टियों के अलावा गोस्वामी जी ने तीसरी दृष्टि भी रखी है। पहली दो दृष्टियाँ योगदृष्टि से संबंधित हैं और तीसरी दृष्टि है—रावण की दृष्टि, आसुरी अंधता की दृष्टि। असुर योग का मर्म नहीं जानते। बस, जैसे-तैसे चीजों के केवल भौतिक स्वरूप में ही उलझते हैं और उन्हीं के साथ खिलवाड़ करते हैं।

गोस्वामी जी कहते हैं—

कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाइ॥

रावण कैलास की नाप-तौल करने लगा, उसको योग से कोई मतलब नहीं है। भौतिकता में उलझे, फँसे जीव योग का अर्थ और मर्म नहीं जानते। जो योग का अर्थ और मर्म जानते हैं, जो अध्यात्म की साधना, जो अध्यात्म की सिद्धियों का अर्थ समझते हैं, उन्हीं के लिए है, ये तीर्थयात्रा।

(3) तृतीय दिवस : तीर्थस्थल—नैमिषारण्य (तीरथ बर नैमिष बिख्याता)—शास्त्रकारों ने नौ अरण्यों की चर्चा की है। दंडकारण्य, सैंधवारण्य, पुष्करारण्य, नैमिषारण्य, कुरुजांगल्य, उत्पलावर्तकारण्य, जम्बूमार्ग, हिमबदरण्य और अर्बूदारण्य। इन नौ अरण्यों में से जो चौथे क्रमांक पर अरण्य है, वह है—नैमिषारण्य। तीर्थवास का लाभ तभी है, जब हमारा मन तीर्थस्वरूप हो। तीर्थ में क्या करना चाहिए? तीर्थ में साधना कैसी होनी चाहिए? तीर्थ में साधना कैसे करनी चाहिए? उसके बारे में गोस्वामी जी ने मनु-शतरूपा का उदाहरण प्रस्तुत किया है। मनु-शतरूपा ने यहीं नैमिषारण्य में तप-साधना की, साधना के बाद उनका मन और जीवन रूपांतरित हुआ, फिर उनको नया शरीर मिला। मनु-शतरूपा वही हैं, जिनसे मनुष्यों की यह अनुपम सृष्टि उत्पन्न हुई।

मनु-शतरूपा ने नैमिषारण्य में रहकर तप-साधना की और तप-साधना करते हुए जब उन्होंने प्रभु के दर्शन प्राप्त किए, तब उनको वरदान मिला कि—

होइहहु अवध भुआल तब मैं होब तुम्हार सुत॥ जब तुम अयोध्या के राजा होगे, उस समय मैं तुम्हारा पुत्र बनूँगा। मनु-शतरूपा का रूपांतरित जीवन, तपस्या से पवित्र जीवन ही भावी समय में दशरथ-कौसल्या के रूप में प्रकट हुआ तो नैमिषारण्य में जो तप किए जाने का सुफल है, वह सुफल अयोध्यापुरी में फलता है और मनु-शतरूपा ही दशरथ-कौसल्या के रूप में अयोध्यापुरी के महाराज व महारानी होते हैं और भगवान श्रीराम उनके घर में, उनके पुत्र के रूप में, **अंसन्ह सहित मनुज**

अवतारा। अपने अंशों सहित, अपने चारों भाइयों के साथ प्रकट होते हैं।

(4) चतुर्थ दिवस : तीर्थस्थल—अयोध्या (बंदउँ अवध पुरी अति पावनि)—जहाँ प्रभु श्रीराम ने जन्म लिया, वह तीर्थस्थल अयोध्या है।

गोस्वामी जी कहते हैं—

अवध प्रभाव जान तब प्रानी।
जब उर बसहिं रामु धनुपानी॥

बिना भक्ति के अयोध्या केवल आँखों से देखी जा सकती है, लेकिन आत्मा में उसकी अनुभूति नहीं पाई जा सकती। हमारे राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अपने महाकाव्य में इसकी महिमा के बारे में कहते हैं—

है अयोध्या अवनि की अमरावती,
इन्द्र हैं दशरथ विदित वीरव्रती,
वैजयंत विशाल उनके धाम हैं,
और नंदन वन बने आराम हैं।

और वहाँ प्रवाहित सरयू की महिमा के प्रति गुप्त जी के शब्द हैं—

स्वर्ग की तुलना उचित ही है यहाँ,
किंतु सुरसरिता कहाँ, सरयू कहाँ?
वह मरों को मात्र पार उतारती,
यह यहीं से जीवितों को तारती।

भगवान श्रीराम जब धरती पर आते हैं और जब अयोध्या में विराजमान होकर अपनी अवतार लीला करते हैं, तो साकेत का समूचा सौंदर्य धरती पर प्रकट हो जाता है। इसलिए मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने काव्य का नाम रखा—साकेत। साकेत यानी नित्य अयोध्या।

जब महाराज दशरथ से रानी कैकेयी के माँगे गए वचनों के कारण श्रीराम अयोध्या से जाने लगे, तो दशरथ जी कैकेयी को समझाने की कोशिश करते हैं कि—

जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु
चंद बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिन
समुझि धौं जियँ भामिनी॥

जैसे सूर्य के बिना दिन, प्राण के बिना शरीर और चंद्रमा के बिना रात निर्जीव तथा शोभाहीन हो जाती है, वैसे ही श्रीरामचंद्र जी के बिना अयोध्या हो जाएगी, हे कैकेयी, तुम इस तथ्य को समझने की कोशिश तो करो।

माता कौशल्या राम जी से कहती हैं—

बड़ भागी बनु अवध अभागी।
जो रघुबंसतिलक तुम्ह त्यागी॥

हे राम, वन बड़ा भाग्यवान है और यह अवध बड़ा अभागा है, जिसे तुमने त्याग दिया। वनगमन की तैयारी में माता सुमित्रा लक्ष्मण जी को समझाती हुई कहती हैं कि

अवध तहाँ जहँ राम निवासू।

अयोध्या तो वहीं है, जहाँ राम बसते हैं। जहाँ राम हैं, वहीं अयोध्या है; क्योंकि राम के साथ ही साकेत की दिव्यता रहती है।

(5) पंचम दिवस : तीर्थस्थल—मिथिला (बेगि बिदेह नगर निअराया)—जहाँ माता सीता ने जन्म लिया, वह तीर्थस्थल है—मिथिला। गोस्वामी जी कहते हैं—यह राजा जनक का नगर है। जब महर्षि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को लेकर मिथिला की ओर चले, तब धीरे-धीरे उनको दिखाई देने लगा कि अब मिथिला समीप ही है। पूरा मिथिला क्षेत्र ज्ञानक्षेत्र होने के साथ-साथ शक्तिक्षेत्र भी है। यहाँ ज्ञान की उपासना के साथ शक्ति की उपासना भी होती रही है।

मिथिला के प्रसंग में, आठ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं, जिनके बारे में गोस्वामी जी चर्चा करते हैं,

(1) पहली घटना—असुरों का बढ़ता हुआ आतंक और

(2) दूसरी घटना है—अहल्या उद्धार की, जो मिथिलाक्षेत्र में संपन्न हुई।

(3) तीसरी घटना है—धनुष यज्ञ की; क्योंकि धनुष यज्ञ का समाचार सुन करके विश्वामित्र जी राम-लक्ष्मण जी के साथ मिथिला आए और

(4) चौथी घटना जो सबसे महत्त्वपूर्ण थी, वह थी-धनुष भंग होना। उस धनुष को राम-सीता के मिलन का माध्यम बनना था। जब श्रीराम के हाथों द्वारा धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने से वह धनुष भंग हो गया, तो भी एक घटना घटित होनी शेष थी, वह

(5) पाँचवीं घटना थी—परशुराम जी का अत्यंत क्रोधित होना व

(6) छठवीं घटना थी—परशुराम के क्षोभ, विषाद व क्रोध का अंत, उनके मन में शांति की स्थापना और उनके एक नए जीवन की शुरुआत। इसके बाद

(7) सातवीं घटना घटी—सीता व राम जी का विवाह हुआ और

(8) आठवीं घटना मिथिला-क्षेत्र में वह घटी, जिसमें सींता जी ने पहचान कराई कि वे महालक्ष्मी हैं।

ये आठ घटनाएँ गोस्वामी जी ने मिथिला-क्षेत्र की अपनी रामकथा में वर्णित की हैं।

(6) षष्ठम दिवस : तीर्थस्थल—चित्रकूट (चित्रकूट गिरि करहु निवासू)—भगवान श्रीराम अपने वनवास काल में सबसे ज्यादा समय (लगभग 11 वर्ष तक) चित्रकूट में रहे, यह 11 वर्ष उनकी साधना का काल था। उन्होंने यहाँ पर रह करके ऋषि अत्रि के सान्निध्य में साधनाएँ संपन्न कीं। चित्रकूट भगवान श्रीराम का साधना-क्षेत्र है और इसलिए गोस्वामी जी ने चित्रकूट की बड़ी महिमा सुनाई है।

चित्तशुद्धि के अष्टांग योग-साधना की दृष्टि से देखा जाए, तो इस क्रम में चित्रकूट के विभिन्न तीर्थस्थल आते हैं, जिनमें पहला—**भरत कूप** यानी शुभकर्मों का संचय व शुभकर्मों का समर्पण है, फिर **रामघाट** सत्संग की महिमा दरसाता है और इसके उपरांत **मंदाकिनी-पयस्विनी का संगम,** यानी रामकथा व रामभक्ति का मिलन है—ये तीनों साधना के बहिरंग साधन हैं।

इसके बाद वास्तविक अध्यात्म शुरू होता है और वह है—**कामदगिरि**। फिर अगले क्रम में अध्यात्म साधना की परिणति—**रामवन** में, सिद्धियों व आध्यात्मिक विभूतियों के रूप में होती है और फिर इसके अगले क्रम में जब साधक समस्त सिद्धियों व विभूतियों को छोड़ देता है, तो **स्फटिक शिला**रूपी शुद्ध चित्त की अवस्था प्राप्त होती है, लेकिन यहाँ पर भी यदि छिपा हुआ संस्कार उभरता है तो भगवान के अनुग्रह से उससे पीछा छूट जाता है।

इसके उपरांत **महर्षि अत्रि** के प्रभाव से धर्ममेघ समाधि व कैवल्य ज्ञान और **माता अनसूया** के प्रभाव से रूपांतरित जीवन, परम ज्ञान व परा भक्ति का आशीर्वाद मिलता है।

7. सप्तम दिवस : तीर्थस्थल—पंचवटी (तुरतहिं पंचवटी निअराई)—पंचवटी की कथा संकल्प की कथा है। चित्रकूट में भगवान ने वैराग्यपूर्ण साधना की और पंचवटी के क्षेत्र में निशिचरों के वध का संकल्प लिया। संक्षिप्त में इसका कथा-प्रसंग यह है कि जब भगवान श्रीराम चित्रकूट-क्षेत्र से आगे चले, तो आगे बढ़ने पर उन्होंने दंडकवन क्षेत्र में ऋषि-मुनियों की हड्डियों का ढेर देखा और यह जाना कि—

निसिचर निकर सकल मुनि खाए।

तब प्रभु श्रीराम ने संकल्प किया—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

इस पूरी भूमि को मैं राक्षसों से रहित कर दूँगा, जिनके आचरण ऐसे हैं, जो सत्पुरुषों का भक्षण करते हैं, सत्कर्मों में बाधा पैदा करते हैं, वे लोग इस धरती पर रहेंगे ही नहीं। आगे बढ़ने पर वे पहले सुतीक्ष्ण जी के पास गए, फिर महर्षि अगस्त्य के पास गए और फिर उनकी आज्ञा से पंचवटी की ओर चले।

पंचवटी पर उनकी जटायु से भेंट हुई और वहीं पर गोदावरी के पास उन्होंने पंचवटी आश्रम

बनाया और वहाँ भगवान श्रीराम—सीता जी व लक्ष्मण जी सहित रहने लगे। इसी स्थान पर शूर्पणखा का आगमन हुआ और अपने अशिष्ट व अमर्यादित आचरण के कारण वह नाक-कान से रहित हुई, यह प्रभु श्रीराम-लक्ष्मण द्वारा असुरों को दी जाने वाली पहली चुनौती थी।

इसके बाद श्रीराम का खर-दूषण व त्रिसिरा से युद्ध हुआ और इनका भी अंत हुआ। तत्पश्चात रावण द्वारा सीताहरण की घटना हुई, जिसमें जटायु ने रावण से युद्ध किया और फिर रावण द्वारा उसके पंख काट दिए जाने के कारण वह पराजित होकर भूमि पर गिर पड़ा, उसी ने श्रीराम-लक्ष्मण जी को रावण द्वारा सीताहरण की घटना सुनाई।

(8) अष्टम दिवस : तीर्थस्थल—रामेश्वरम् (जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं)—जिसे प्रभु श्रीराम ने स्वयं अपने हाथों से स्थापित किया, वह है रामेश्वरम् तीर्थ। पंचवटी जैसे संकल्प-क्षेत्र है, वैसे ही रामेश्वरम् विजय-क्षेत्र है, यहीं से श्रीराम अपनी विजय का अभियान रचते हैं। रामराज्य की संकल्पना चरितार्थ होने में जो सबसे बड़ा विघ्न है—वह है रावण। यहाँ उसके नाश का क्रम शुरू होता है। यहीं से सत्कर्म, सद्धर्म पर जो अंकुश लगे हुए हैं, जो काँटे लगे हुए हैं, उन्हें हटाने का अभियान शुरू हो जाता है। रामेश्वरम् तक भगवान श्रीराम की लीला क्रम की घटनाओं की एक लंबी यात्रा है। यह प्रभु श्रीराम की कृपा का भी क्षेत्र है। इस रामेश्वरम् तीर्थ की स्थापना में उन्हें अगस्त्य ऋषि मिले, भगवान शिव स्वयं उपस्थित हुए, भगवान शिव के रुद्रावतार स्वयं हनुमान जी वहाँ उपस्थित हैं और फिर भगवान श्रीनारायण राम रूप में उपस्थित हैं—यह स्थापना अद्भुत है, आश्चर्यजनक है।

(9) नवम दिवस : तीर्थस्थल—सुमेरु पर्वत (गिरि सुमेर उत्तर दिसि दूरी)—सुमेरु पर्वत एक सिद्ध क्षेत्र है। यह हमारी तीर्थयात्रा का, हमारे जीवन के पुण्य, हमारे जीवन की शुभता का अंतिम और चरम परिणाम है। यह साधना से सिद्धि की ओर यात्रा है। सुमेरु हमारी चेतना का, हमारी साधना का शिखर है। अनेक जन्मों की साधना के पश्चात काकभुशुंडि ने इसे पाया है। इस प्रसंग में कई तत्त्वों की, कई प्रसंगों की चर्चा है। जिसमें मुख्य प्रसंग गरुड़ की मोहकथा है, उस मोह को दूर करने के प्रयास में गरुड़ जी—नारद जी, ब्रह्मा जी, शिव जी के पास जाते हैं और तब शिव जी उन्हें काकभुशुंडि के पास भेजते हैं। काकभुशुंडि जी इसी सुमेरु पर्वत पर रहते हैं।

इसी सुमेरु पर्वत पर काकभुशुंडि जी को आध्यात्मिक अनुभूतियाँ प्राप्त हुईं, लेकिन इसके पूर्व उनके जन्म-जन्मांतर के प्रसंगों में कई घटनाएँ घटित हुईं—जिसमें पहले उन्हें शिव जी का कोप मिला, फिर उन्हें शिव जी की कृपा मिली और अंत में उन्हें शिव जी की प्रशंसा मिली। वह भगवान शिव के साथ भगवान का बालरूप भी देखने के लिए गए। इसके अलावा लोमश ऋषि के शाप के कारण वे काकभुशुंडि बन गए और उनके आशीष व वरदान के कारण रामभक्ति का तत्त्व व मर्म जान सके। इस तरह रामकथा में वर्णित तीर्थक्षेत्र अपने आप में अद्भुत व अलौकिक हैं।

इन तीर्थों में प्रयागराज—ज्ञान का क्षेत्र है, कैलास—योग का क्षेत्र है, नैमिषारण्य—तप का क्षेत्र है, अयोध्या भक्ति का क्षेत्र है एवं मिथिला ज्ञानक्षेत्र होने के साथ शक्तिक्षेत्र भी है। यहाँ शक्ति और ज्ञान की उपासना भी होती रही है। चित्रकूट भगवान श्रीराम का साधना-क्षेत्र है, वैराग्य-क्षेत्र है। पंचवटी संकल्प-क्षेत्र है, रामेश्वरम् विजय-क्षेत्र व कृपा-क्षेत्र है और सुमेरु पर्वत-सिद्धि का क्षेत्र है, यह सिद्धि का चरम शिखर है। इस तरह रामकथा में वर्णित हर तीर्थस्थल अपने आप में विशेष व महत्त्वपूर्ण है। ❑

समाज की बदलती दशा

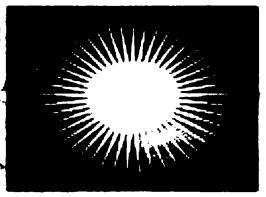

समाज की बदलती दशा आने वाले समय में अनेकों सकारात्मक परिवर्तन लाएगी। आज की जो नकारात्मक परिस्थितियाँ हैं, कल वे सभी उलट जाएँगी। इनकी परिवर्तित दशा से दिशा भी परिवर्तित होगी। आज की स्थिति में समाज—जातियों, क्षेत्रों व धर्मों में बँटा है। उसे अनगिनत कुरीतियाँ, मूढ़ताएँ, प्रथाएँ, परंपराएँ जकड़े हुए हैं।

इनमें से क्या उचित है, क्या अनुचित? क्या स्वीकारने योग्य है, क्या अस्वीकार करना चाहिए?—यह विवेक कहीं विलुप्त हो गया है। आपसी संबंध अनेकों तरीके से उलझ गए हैं। पैसा प्रदर्शनों में प्रवाहित हो रहा है। निरर्थकताएँ सार्थक लग रही हैं, जबकि सार्थकता को निरर्थक माना जा रहा है। सारी रीति उलटी हो चली है, इस उलटे को उलटकर सीधा करने की जरूरत है।

इस अनर्गल व अनावश्यक उलटफेर का सबसे बड़ा कारण है कि प्राय: हम सभी भूल गए हैं कि सबसे पहले हर कोई मानव है, बाद में कुछ और। जब मानव होना भूला तो मानवता भूली, मानव-प्रेम भूल गया। अब तो केवल जाति, वंश, धर्म, क्षेत्र व भाषा के खंडों में मानव व मानवता खंड-खंड होकर खंडित हो रही है।

हममें से प्राय: प्रत्येक—जाति, धर्म, क्षेत्र, वंश व भाषा से अपनी सामाजिक स्थिति पहचानता है, मानव होने से नहीं। तनिक विचार करें कि हममें से किसको कितनी बार याद आता है कि हम मानव हैं और मानव-समाज का हिस्सा हैं। इसी विस्मरण का स्मरण कराने के लिए महर्षि व्यास ने उपदेश दिया था—'**मनुर्भव**' मनुष्य बनो। यदि यह छोटा-सा सच हर कोई याद रखे तो उसकी और समाज की प्राय: सभी समस्याएँ सरलता से सुलझ जाएँ।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव ने हमें ध्येय दिया—व्यक्ति निर्माण, परिवार निर्माण एवं समाज निर्माण। व्यक्ति के गुण-अवगुण परिवार को प्रभावित करते हैं। परिवार की स्थितियाँ समाज को प्रभावित करती हैं। समाज की संरचना का आधार संवेदना है। संवेदना के सूत्रों से इसका ताना-बाना बुना होता है। संवेदनाओं के ये सूत्र जब-जहाँ कमजोर होने लगे, तब वहाँ यह संरचना कमजोर पड़ने लगी।

प्राय: हम सभी भूल गए हैं कि सबसे पहले हर कोई मानव है, बाद में कुछ और। जब मानव होना भूला तो मानवता भूली, मानव-प्रेम भूल गया। अब तो केवल जाति, वंश, धर्म, क्षेत्र व भाषा के खंडों में मानव व मानवता खंड-खंड होकर खंडित हो रही है।

अगर हम जीवविज्ञान की जीवन-दृष्टि से समझें; तो व्यक्ति कोशिका है, परिवार ऊतक और फिर इसकी बहुलता-व्यापकता अंगों का निर्माण करती है। फिर सभी अंग मिलकर समाजरूपी शरीर का निर्माण करते हैं। शरीर का सुडौल व स्वस्थ होना, अंगों के सुडौल व स्वस्थ होने पर निर्भर करता है। जबकि अंगों की सुडौलता व स्वास्थ्य- कोशिकाओं व ऊतकों के स्वस्थ होने पर

निर्भर करता है। पूरे शरीर की बीमारी के लिए इनमें से किसी कोशिका का बीमार होना काफी है। किसी एक कोशिका में हुआ कैंसर पूरे शरीर को बीमार करने के लिए-मारने के लिए पर्याप्त है। इसलिए स्वस्थ व सभ्य समाज के लिए सभी का स्वस्थ व सभ्य होना आवश्यक है।

इसके लिए सबसे पहली जरूरत मनुष्य बनना और मनुष्य बनाना है। यह तभी होगा, जब जीवन की समझ विकसित होगी। दासी जबाला के पुत्र सत्यकाम को ऋषि गौतम ने अपना शिष्य बनाने में तनिक-सा संकोच नहीं किया था, क्योंकि सतयुगी परिस्थितियों के लिए सद्बुद्धि व सन्मार्ग पर सभी का समान अधिकार होना चाहिए। अपने युग के श्रेष्ठतम महर्षि मतंग को—उपेक्षित मानी जाने वाली शबर कन्या शबरी को अपनी शिष्या बनाकर उसे अध्यात्म मार्ग व योग मार्ग की शिक्षा देना सहज स्वीकार था। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम को भी उसके जूठे बेर खाने में तनिक-सा भी संकोच न हुआ।

जब जीवन की मौलिक आवश्यकताएँ—मनुष्य का मौलिक अधिकार बनेंगी, तभी समाज तमस् से ज्योतिपथ पर बढ़ेगा। भोजन, वस्त्र सभी को चाहिए। इसी तरह शिक्षा-चिकित्सा सभी को चाहिए। जब तक इनसे कोई भी वंचित रहेगा, तब तक समाज स्वस्थ, समुन्नत, सभ्य, सुसंस्कृत न हो सकेगा। मूल नक्षत्र में जन्म लेने वाला अभागा होता है, इस मूढ़मान्यता के कारण बालक रामबोला को सभी ने उपेक्षित-तिरस्कृत किया। बेचारा वह बालक चित्रकूट आकर बंदरों के साथ बाँटकर रोटी और चने खाने लगा। ऐसे में उसे अपनाया—सोरों क्षेत्र के नरहरि स्वामी ने। आगे चलकर वही बालक महान संत एवं महान साहित्यकार तुलसीदास बने। जब तक किसी भी समाज में जीवन ठुकराया जाएगा, प्रतिभाएँ तिरस्कृत होंगी—तब तक वह समाज कभी भी श्रेष्ठ न बनेगा।

इस स्थिति में परिवर्तन तभी संभव है; जब जीवन के मानक बदलें, मूल्य व मानदंड बदलें। जब गुण-कर्म व स्वभाव के आधार पर श्रेष्ठता परखी, स्वीकारी, अपनाई और सराही जाएगी; तब समाज में परिवर्तन का प्रवाह प्रवाहित होने लगेगा, बदलाव की बयार बहने लगेगी। अभी भी दुनिया के किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में यह रीति निभाई जाती है कि वहाँ के लोग अपने घर के बचे हुए भोजन व अन्य वस्तुओं को हर शाम घर से बाहर सुरक्षित ढंग से रख देते हैं और रात में जरूरतमंद लोग उन्हें उठा ले जाते हैं। ऐसी स्थिति में न तो किसी को भीख माँगने के लिए विवश होना पड़ता है और न ही भोजन व अन्य वस्तुएँ बरबाद होने पाती हैं।

प्रज्ञापुरुष के महातप से संभव होने वाले महाप्रज्ञा के अवतरण से नवयुग—प्रज्ञायुग का स्वरूप पाएगा। इस बदले हुए समय में सत, सत्त्व एवं सत्य का बोलबाला व वर्चस्व होने के कारण ही इसे सतयुग कहा जाएगा। तब लोग अपने जाति-वंश या कुल-क्षेत्र अथवा भाषा के कारण नहीं, बल्कि अपने गुण-कर्म व स्वभाव के आधार पर अपनी पहचान प्रदर्शित करेंगे। उन्हें मानव होने और मानवीय गुणों को समृद्ध करने में गर्व की अनुभूति होगी।

संसार व समाज में न तो कोई निरुपयोगी है और न निरर्थक, बस, उसकी उपयोगिता को समाज-संसार पहचान नहीं पा रहा। इसी तरह से प्रतिभावान

हर कोई है, हाँ! उसकी प्रतिभा के आयाम अवश्य अलग-अलग हो सकते हैं। ईश्वर ने अपनी किसी भी रचना को विभूति से वंचित नहीं रखा है, लेकिन इसकी परख-पहचान तभी होगी, जब इसके लिए बुद्धि-विवेक का समुचित उपयोग-प्रयोग होगा। अभी की दुर्गति का कारण केवल मानव-विवेक का अभाव है। आने वाले समय में जब अँधियारा हटेगा, घटेगा, छँटेगा; तब समाज के लिए प्रकाश-पथ प्रशस्त होगा। मानव-विवेक के द्वारा मूल्य, मानक एवं मानदंड बदले जाएँगे। प्रकृति में अवतरित होने वाला प्रकाश मानव के तन-मन और जीवन में अवतरित होकर समाज की सामूहिकता में अपना विस्तार पाएगा।

अब और तब में रात और दिन का अंतर होगा। प्रज्ञापुरुष कें महातप से संभव होने वाले महाप्रज्ञा के अवतरण से नवयुग- प्रज्ञायुग का स्वरूप पाएगा। इस बदले हुए समय में सत, सत्त्व एवं सत्य का बोलबाला व वर्चस्व होने के कारण ही इसे सतयुग कहा जाएगा। तब लोग अपने जाति-वंश या कुल-क्षेत्र अथवा भाषा के कारण नहीं, बल्कि अपने गुण-कर्म व स्वभाव के आधार पर अपनी पहचान प्रदर्शित करेंगे। उन्हें मानव होने और मानवीय गुणों को समृद्ध करने में गर्व की अनुभूति होगी। परंपराएँ मानव विवेक के अनुसार परिमार्जित, परिष्कृत व परिवर्तित होंगी। प्रत्येक मानव अपने कर्मों से मानवता को समृद्ध करेगा। समाज में संवेदना के सूत्र चहुँओर सुदृढ़ होंगे। संवेदनाओं से सिंचित समाज स्वयं में अनेकों सुखद बदलाव लाएगा।

तब शिक्षा और चिकित्सा—उद्योग या व्यवसाय न बने रहेंगे। इनकी विशेषताएँ सेवाकार्य में सुनियोजित होंगी। सभी कर्मशील होंगे। सत्त्व गुण बढ़ने से तमस् की जड़ता या आलस्य-प्रमाद को कोई अवसर न मिल सकेगा। कर्म की प्रधानता में स्वाभाविक रूप से गुणों की प्रधानता बढ़ेगी। शिष्टाचार सबके लिए सहज होगा, सदाचार ही सबके लिए धर्म बनेगा। भूखे, बीमार व भिखारी कहीं भी ढूँढ़े न मिलेंगे; क्योंकि तब जीवन की मौलिक आवश्यकताएँ ही जीवन का मौलिक अधिकार बनेंगी। आवश्यक आवश्यकताएँ सभी की पूरी होंगी, ठाठ-बाट रचाने की अनुमति किसी को भी न मिलेगी। उपेक्षित एवं अछूत जैसी मान्यताओं का कोई महत्त्व न रहेगा। **'जाति-वंश सब एक समान, नर और नारी एक समान'**—मात्र विचार न रहकर सभी का व्यवहार बनेगा।

धर्म का सच्चा मर्म सभी समझेंगे। ऐसे में हमारा ईश्वर, तुम्हारा अल्लाह और उसका गॉड कहकर किसी को बहकाया न जा सकेगा। धर्मांतरण हर किसी को हास्यास्पद लगेगा। सभी धर्माचरण की ओर आगे बढ़ेंगे। शिष्टाचार अपने व्यापक रूप में नैतिकता बनेगा। सदाचार को धर्म की मान्यता मिलेगी और आंतरिक परिष्कार की निरंतरता को ही अध्यात्म समझा जाएगा।

सामाजिक समरसता, सौहार्द सहज विकसित होने से, सब ओर संवेदना सिंचित होने से कहीं दंगे-फसाद न दिखाई देंगे। लड़ाइयों को लड़कपन एवं मार-काट को मूर्खता समझे जाने से इनके दर्शन कहीं न होंगे। मानव में यह पशुता-पाशविकता कहीं भी नजर न आएगी; क्योंकि यह मनुष्य मात्र में हेय, त्याज्य, गर्हित व घृणित समझी जाएगी। ऐसे में इसे अपनाने की बात तो दूर, कोई भी इसे छूने से परहेज करेगा। वीरता और साहस के गुण श्रेष्ठ कार्यों में प्रदर्शित होंगे। सत्कार्य में बड़े-से-बड़ा जोखिम उठाने को ही साहस व वीरता माना जाएगा। समाज के ये बदलते मूल्य व मानक ही व्यवस्था के प्रत्येक क्रम में दिखाई देंगे। इसी से व्यवस्था का व्यवस्थित क्रम बन पड़ेगा। ❑

अपनों से अपनी बात

हमारा युग निर्माण सत्संकल्प : नवसृजन का शंखनाद

हर गायत्री परिजन के लिए पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी से जुड़ना एक ऐसे अकल्पनीय सौभाग्य के रूप में है, जिसके साकार हो पाने का अवसर लाखों-करोड़ों जन्मों में कभी एक बार मिल पाता है। अनेकों जन्मों के पुण्यकर्म जब कभी एक साथ फलीभूत होते हैं, तब कहीं जाकर जीवन में वह संभावना जाग पाती है, जिसे हम हमारे जीवन के सौभाग्य के सूर्योदय के रूप में गिन सकते हैं।

वर्तमान समय में जब धर्म, व्यापार-सा बन चला है, अध्यात्म के नाम पर लोग आस्था की दुकानें खोले हुए दिखाई पड़ते हैं और भगवानों की भगवत्ता का मूल्यांकन भी लोग इस आधार पर करते नजर आते हैं कि कौन कितनी मनोकामनाएँ पूर्ण कर सकता है, तो कोई विशेष आश्चर्य नहीं कि गुरुओं के नाम पर भ्रमित करने वाले लोग ज्यादा दिखाई पड़ते हैं और ऐसे विषाक्त प्रवाह के समय में, विकृत मानसिकता के दौर में यदि कभी जीवन को तारने वाले गुरु मिल भी जाएँ तो लोग उनका मूल्य समझ नहीं पाते हैं।

गुरु उस आध्यात्मिक चेतना का नाम है, जिसके जीवन में प्रवेश करते ही जीवन का, चेतना का, चिंतन का, व्यक्तित्व का, दृष्टिकोण का, आचरण का रूपांतरण आरंभ हो जाता है। इधर उनका स्पर्श मिला नहीं कि चेतना ऊपर उठने के लिए तड़पने-सी लगती है। सद्गुरु वो हैं—जिनसे जुड़ जाने का नाम उपासना हो जाता है, जिनके दिखाए पथ का अनुसरण साधना हो जाता है, जिनके कहे को करने का नाम ही अध्यात्म हो जाता है, जिनके लिखे को पढ़ने का नाम ही स्वाध्याय हो जाता है और जिनके चरणों का स्पर्श ही चारों धाम की यात्रा बन जाता है।

गायत्री परिजन उन सौभाग्यशालियों में से हैं, जिन्हें एक ऐसी ईश्वरीय चेतना से जुड़ पाने का सौभाग्य मिला, जिन्हें आज हम पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी के नाम से पुकार पाते हैं। बालकों जैसा निर्मल हृदय, स्फटिक जैसा चरित्र, आदिशक्ति के सदृश करुणा, महामानवों जैसी गंभीरता और युग को बदल देने वाला चिंतन, ऐसे व्यक्तित्व से जुड़ पाना तो दूर की बात है, उनके दर्शन का सौभाग्य ही युगों-युगों में कहीं एक बार मिल पाता है।

मानव के शरीर में महामानव, नर के शरीर में नारायण, इनसान के शरीर में भगवान के अवतरण की कहानियाँ लोग इतिहास में, पुराणों में, आख्यानों में पढ़ते हैं, पर ऐसे व्यक्तित्व को आँखों से देख पाने का सौभाग्य, कानों से सुन पाने का सौभाग्य, हाथों से स्पर्श कर पाने का सौभाग्य उनके शिष्य, उनके अनुयायी बन पाने का सौभाग्य एवं उनके चिंतन के प्रतिनिधि बन पाने का सौभाग्य विरलों को ही मिल पाता होगा।

उन महान ईश्वरीय चेतना का जीवन संदेश उस बदलते समय की आहटों को सुनाना था, जिसे हम युग-परिवर्तन कहकर पुकारते हैं और उस युग निर्माण के वृक्ष का बीज सत्संकल्प ही है। आने वाले समय का, सतयुग की वापसी का, गायत्री परिवार की सारी विचारणाओं, योजनाओं, गतिविधियों एवं कार्यक्रमों का घोषणापत्र, 21वीं सदी का-नवयुग का संविधान एक ही है, जिसे

पूज्य गुरुदेव ने 'हमारा युग निर्माण सत्संकल्प' कह कर पुकारा। इसके 18 सूत्रों में उन्होंने अठारह महापुराणों की भाँति कल के समाज की झलक दिखला दी है।

इस सत्संकल्प को इसी भाँति सोचने-विचारने की आवश्यकता है कि जब भावनाओं की गहराई से हम इन सूत्रों को आत्मसात् करेंगे तो स्वत: ही वह युग-परिवर्तन घटित होने लगेगा, जिसका सूक्ष्मस्वरूप यह सत्संकल्प है।

इच्छा जब विश्वास में बदलती है तब संकल्प कहलाती है। संकल्प का अर्थ यह है कि मात्र इसे करना ही जरूरी नहीं है, वरन यह टूट न जाए यह सुनिश्चित करना भी उतना ही आवश्यक है। इसीलिए पूज्य गुरुदेव ने सत्संकल्प को अपने आपसे शुरू किया। दूसरों को कुछ करने के लिए कहने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि हम वैसा ही करने लग जाएँ।

यही कारण है कि पूज्य गुरुदेवकृत सत्संकल्प का प्रारंभ होता है आस्तिकता से, विश्वास से। आत्मविश्वास और ईश्वरविश्वास एक ही सत्य के दो पहलू हैं। ईश्वर पर अटूट विश्वास और यह विश्वास कि वह परमात्मचेतना क्षण-प्रतिक्षण हमारे साथ है—इसी का नाम आस्तिकता है। जिसके भीतर ऐसी आस्तिकता होती है, वह यह मानता है कि ईश्वर सर्वत्र हैं, सर्वव्यापी हैं, न्यायकारी हैं। जिसकी निष्ठा इस प्रकार की होती है, वह न तो शरीर से दुष्कर्म करता है और न ही मन में दुर्भाव को स्थान देता है।

इसीलिए पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि सत्संकल्प का **पहला सूत्र** ये ही है कि **'हम ईश्वर को सर्वव्यापी, न्यायकारी मानकर उसके अनुशासन को अपने जीवन में उतारेंगे।'** यदि हम सत्य में ऐसा करते हैं, आस्तिकता और कर्त्तव्यपरायणता हमारे जीवन में है तो इसका पहला प्रभाव हमारे शरीर और मन पर दिखना चाहिए; क्योंकि शरीर एवं मन ही तो ईश्वरप्रदत्त निकटस्थ उपहार हैं। शास्त्र कहते हैं कि **'शरीर माद्यं खलुधर्मसाधनम्'**— यह शरीर ही धर्म-अध्यात्म की प्राप्ति का आधार है।

शरीर हमारा सबसे बड़ा सहायक है। निरंतर आत्म-उद्देश्य की प्राप्ति के लिए संलग्न रहता है। इसीलिए उसे निरोगी बनाए रखना हमारा प्रमुख दायित्व है। सत्संकल्प का **दूसरा सूत्र** उसी शरीर की रक्षा का ध्यान रखने के संकल्प की याद दिलाता हुआ कहता है कि **'शरीर को भगवान का मंदिर समझकर आत्मसंयम और नियमितता द्वारा आरोग्य की रक्षा करेंगे।'**

शरीर को साधा तो मन को साधना भी उतना ही अनिवार्य हो जाता है। किसी का शरीर बड़ा सुंदर हो, परंतु मन में कुविचार और दुर्भावनाएँ भरी पड़ी हों तो ऐसे व्यक्तित्व के साथ कौन समय गुजारना चाहेगा? शरीर का स्वस्थ रहना जितना जरूरी है, उतना जरूरी मन का स्वच्छ रहना भी है। मन यदि एकाग्र हो जाए, आत्मविकास के पथ पर आरूढ़ हो जाए तो मानवीय जीवन की गौरव-गरिमा को लौटते समय नहीं लगता है।

पूज्य गुरुदेव स्मरण दिलाते हैं कि शरीर के प्रति अपने कर्त्तव्यपालन की पूर्ति करने के साथ ही हमें मन के प्रति भी अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करते रहना चाहिए। मन में कुविचार और दुर्भावनाएँ या तो गलत संग से आती हैं या गलत अध्ययन से आती हैं। कुविचारों को दूर करने का एकमात्र तरीका सद्विचार ही हैं। लोहा, लोहे को काटता है और विष, विष को मारता है। इसीलिए **तीसरे सूत्र** के रूप में पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि **'मन को कुविचारों और दुर्भावनाओं से बचाए रखने के लिए स्वाध्याय एवं सत्संग की व्यवस्था रखे रहेंगे।'**

जब शरीर एवं मन की ऊर्जा सही उद्देश्यों के लिए नियोजित होती है तभी आध्यात्मिक दृष्टि

से संयम सध पाता है। पुराने कुसंस्कारों को निरस्त करने के लिए जो आत्मसंग्राम चलता है—उसे ही संयम कहकर पुकारा जाना चाहिए।

जीवनीशक्ति के या जीवन-संपदा के चार प्रमुख क्षेत्र हैं—इंद्रियशक्ति, समयशक्ति, विचार शक्ति एवं धनशक्ति। इनमें से प्रारंभ की तीन यदि ईश्वरप्रदत्त या पूर्वकृत कर्मप्रदत्त हैं तो चौथी शक्ति स्व-पुरुषार्थ से अर्जित करनी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेव ने इंगित किया है कि जो इन शक्तियों को दैवी विभूतियाँ मानते हुए इनके सुनियोजन की व्यवस्था बना लेता है, वह अभावों के होते हुए भी सबसे बड़े धनवान के रूप में जीवन जीता है। ये ही कारण है कि पूज्य गुरुदेव ने हमारे युग निर्माण के सत्संकल्प के **चौथे सूत्र** के रूप में लिखा कि—**'इंद्रिय संयम, अर्थ संयम, समय संयम और विचार संयम का सतत अभ्यास करेंगे।'**

संयम सधते ही जहाँ अनावश्यक अपव्यय रुकता है तो वहीं जीवन की ऊर्जा का सृजनात्मक नियोजन संभव हो पाता है। कितनी भी शक्ति, कितनी भी सामर्थ्य हो—वह श्रेयस्कर परिणाम तभी उत्पन्न कर पाती है, जब उसे अवांछनीयता से हटाकर सृजनात्मक प्रयोजनों हेतु नियुक्त किया जा सके। इसीलिए शरीर, मन पर नियंत्रण रखने वाला संयमित व्यक्ति ही समाज का जिम्मेदार घटक बन पाता है।

ऐसा व्यक्ति फिर पूज्य गुरुदेव के द्वारा लिखित **पाँचवें सूत्र** का उद्घोष करते हुए कहता है कि—**'अपने आप को समाज का एक अभिन्न अंग मानेंगे और सबके हित में अपना हित समझेंगे।'** जिस प्रकार आर्थिक समता का सिद्धांत सनातन और शाश्वत है, उसी प्रकार सामाजिक समता का आदर्श भी अपरिहार्य ही है।

आज समाज की धारा विपरीत हो चली है और हर व्यक्ति व्यक्तिगत हित को सामाजिक हित से ऊपर रखता है; जबकि व्यक्तिगत स्वार्थ को सामूहिक कल्याण के लिए उत्सर्ग कर देने का नाम ही पुण्य-परमार्थ है—इसी को देशभक्ति, त्याग, बलिदान जैसे महान भाव से तौला गया है। सत्संकल्प के **पाँचवें** सूत्र का अनुपालन करने से व्यक्ति महान बनता है, लोकहित की भूमिका का संपादन करता है और देश, समाज का नाम ऊँचा करता है।

इस पथ का पालन करने वाला फिर अपने उत्तरदायित्वों को स्वीकारता है और कर्त्तव्य धर्म से दूर नहीं भागता। अनियंत्रित, अमर्यादित व्यक्ति दुष्ट-दुर्जनों के रूप में समाज पर भार बनते हैं, सर्वत्र विक्षोभ का कारण बनते हैं। अत: सत्संकल्प का **छठा सूत्र** हर जिम्मेदार मनुष्य को याद दिलाता है कि **'मर्यादाओं को पालेंगे, वर्जनाओं से बचेंगे, नागरिक कर्त्तव्यों का पालन करेंगे और समाजनिष्ठ बने रहेंगे।'**

ऐसे महान पथ के अनुगामी मनुष्य ही सुसंस्कारिता की नींव रखते हैं। पूज्य गुरुदेव ने सुसंस्कारिता के चार आधार माने हैं—

(1) समझदारी,
(2) ईमानदारी,
(3) जिम्मेदारी एवं
(4) बहादुरी।

इन्हें आध्यात्मिक गुणों में उतना ही वरिष्ठ माना जाना चाहिए, जितना कि शरीर के लिए अन्न, जल, वस्त्र और निवास को मानते हैं। समझदारी का अभिप्राय दूरदर्शी विवेकशीलता से है, कथनी-करनी का एक होना ईमानदारी है, अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन जिम्मेदारी है तो सभी तरह की उलझनों से निपटने हेतु साहस के भाव का होना बहादुरी है।

इनको अपनाने का सूत्र सत्संकल्प का **सातवाँ सूत्र** है जो कहता है कि **'समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी और बहादुरी को जीवन का एक अविच्छिन्न अंग मानेंगे।'**

ऐसे व्यक्तित्व जो सुसंस्कारिता के इन आभूषणों से युक्त होंगे—वे फिर अपने चारों ओर अपने ही अनुरूप वातावरण का निर्माण करने लग जाते हैं। संसार में रहने वालों को सही सामाजिक व्यवहारों का भी ज्ञान होना चाहिए। सेवा-सहायता न भी कर सकें तब भी सज्जनता, शिष्टाचार को आभूषणों की भाँति अपने व्यवहार में धारण करना चाहिए।

ऐसे गुणों को अपनाने का संकेत सत्संकल्प का **आठवाँ सूत्र** देता है और कहता है कि **'चारों ओर मधुरता, स्वच्छता, सादगी और सज्जनता का वातावरण उत्पन्न करेंगे।'** इसके उपरांत पूज्य गुरुदेव एक अत्यंत क्रांतिकारी सूत्र को लिखते हैं। आज के समाज में सफलता ही मूल्यवान हो गई है; चाहे वो अनीतिपूर्वक ही क्यों न प्राप्त की जाए। लोग सफलता की प्रशंसा करते समय में ये भूल जाते हैं कि कहीं वो सफलता बेईमानी से, धोखेबाजी से, अनीति से, अन्याय से तो प्राप्त नहीं की गई है? सफलता न मिले न सही, पर यदि अनीति का पालन किया जाए तो ऐसी सफलता को त्याग देना ही उचित है। शिवाजी, राणा प्रताप, हरिश्चंद्र, गुरुगोविंद सिंह, बंदा वैरागी, रानी लक्ष्मीबाई को सफलता नहीं भी मिली तो क्या? उनके नीति पर चलते हुए दिए गए बलिदान आज भी प्रेरणा-गाथाओं के रूप में लोगों के हृदय में अंकित हैं। अतः पूज्य गुरुदेव सत्संकल्प के **नौवें सूत्र** के रूप में कहते हैं कि **'अनीति से प्राप्त सफलता की अपेक्षा नीति पर चलते हुए असफलता को शिरोधार्य करेंगे।'**

लोकश्रद्धा के अधिकारी संत-सुधारक और शहीद ही बनते हैं। इन सबके जीवन सत्य और न्याय के लिए उत्सर्ग होते आए हैं। नीति के पथ पर चलने वाले ही मानवीय उच्च मूल्यों का निर्वहन कर पाते हैं और वे ही अपने कर्तृत्व से श्रेष्ठता की कसौटी को निर्धारित कर पाते हैं। मनुष्य की विभूतियाँ, योग्यताएँ सुपात्रों के हाथों में पड़कर महानता की गाथा लिख जाती हैं तो वहीं कुपात्रों के हाथों में वे भर्त्सना का कारण बनती हैं। इसीलिए पूज्य गुरुदेव सत्संकल्प के **दसवें सूत्र** के रूप में लिखते हैं कि **'मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी, उसकी सफलताओं, योग्यताओं और विभूतियों को नहीं, उसके सद्विचारों और सत्कर्मों को मानेंगे।'**

यह सदा स्मरण रखने योग्य बात है कि जब तक समाज, मनुष्य के मूल्यांकन की कसौटी को नहीं बदलेगा तब तक स्थायी परिवर्तन संभव न हो सकेगा। बेईमानी से करोड़पति बने व्यक्ति को भी हमें तिरस्कार की दृष्टि से देखना चाहिए और एक असफल एवं निर्धन व्यक्ति को जिसने सत्कर्मों को अपनाया—उसे हमें श्रद्धा-सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिए—तभी स्थायी परिवर्तन संभव है।

साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यदि हम चाहते हैं कि समाज में सुमधुर वातावरण विकसित हो तो हमें ऐसा वातावरण स्वयं बनाने का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। अपने साथ हम दूसरों से जिस सज्जनतापूर्ण व्यवहार की अपेक्षा करते हैं, वैसा ही हमें दूसरों के साथ भी करना चाहिए। ये ही सत्संकल्प का **ग्यारहवाँ सूत्र** है कि—**'दूसरों के साथ वह व्यवहार नहीं करेंगे, जो हमें अपने लिए पसंद नहीं।'**

ऐसा व्यवहार ही सही अर्थों में उन्नति और प्रसन्नता का कारण बनता है। इसी क्रम में नर-नारी का परस्पर पवित्र दृष्टिकोण रखना, एक अनिवार्य सामाजिक अनुबंध हो जाता है। युग निर्माण सत्संकल्प में **आत्मवत् सर्वभूतेषु, मातृवत् परदारेषु** और **परद्रव्येषु लोष्ठवत्** का भाव सन्निहित है और सही अर्थों में इसी आधार पर नवयुग का सृजन संभव है। इसीलिए सत्संकल्प का **बारहवाँ सूत्र** घोषणा करता है कि **'नर-नारी परस्पर पवित्र दृष्टि रखेंगे।'**

सामाजिक समानता, पवित्रता, सहृदयता को सुनिश्चित करने के उपरांत पूज्य गुरुदेव ऐसे व्यक्ति

की जीवनशैली की ओर इशारा करते हैं कि नवयुग के अग्रदूत सत्प्रवृत्तियों के पुण्य-प्रसार के लिए प्रयत्न करेंगे। बुराइयाँ संसार में इसीलिए फल-फूल पाती हैं क्योंकि उनका आचरण करने वाले, बुराइयाँ फैलाने वाले लोग बहुतायत में उपलब्ध हैं।

सत्प्रवृत्तियों के पुण्य-प्रसार के लिए हर सज्जन व्यक्ति को प्रयत्न करना चाहिए और यह मात्र समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ और धन को परमार्थ हेतु नियोजित करने से ही संभव है। इसीलिए पूज्य गुरुदेव सत्संकल्प के **तेरहवें सूत्र** के रूप में लिखते हैं कि '**संसार में सत्प्रवृत्तियों के पुण्य-प्रसार के लिए, अपने समय, प्रभाव, ज्ञान, पुरुषार्थ एवं धन का एक अंश नियमित रूप से लगाते रहेंगे।**'

सत्प्रवृत्तियों के संवर्द्धन के लिए प्रयास हर व्यक्ति को करना चाहिए। ऐसा करने हेतु व्यक्ति को अंधानुकरण की दुष्प्रवृत्ति को त्यागना अनिवार्य हो जाता है। समाज में अनेकों दुष्प्रवृत्तियाँ व्याप्त हैं, पर ये कुरीतियाँ, संकीर्णताएँ तभी अपना ठिकाना बदलेंगी जब विवेकशील मनुष्य इनका संगठित प्रतिरोध करने की सामर्थ्य विकसित करेंगे और पूरे साहस के साथ पूज्य गुरुदेवकृत **चौदहवें सूत्र** की उद्घोषणा करते हुए कहेंगे कि '**परंपराओं की तुलना में विवेक को महत्त्व देंगे।**'

युग निर्माण का आधार ही मनुष्य का भावनात्मक नवनिर्माण है। जैसे-जैसे हमारी विचारधारा प्रबुद्ध होगी, विवेकशीलता जाग्रत होगी—वैसे-वैसे छूटने योग्य पीछे छूट जाएगा और अपनाने योग्य स्वत: हमारे जीवनक्रम का अंग बनता चला जाएगा।

ऐसे समाज की नींव रखने हेतु अन्य ऐसे व्यक्तियों को साथ जोड़ना भी एक अनिवार्य कार्य है। जैसे-जैसे युग-परिवर्तन का कार्य तीव्र होता चलेगा, वैसे-वैसे इस बात की आवश्यकता पड़ेगी कि व्यक्तिगत, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में संव्याप्त अगणित दुष्प्रवृत्तियों के विरुद्ध व्यापक परिमाण में संघर्ष आरंभ किया जाए।

इसके लिए ऐसे व्यक्तियों को साथ लेना आवश्यक होगा, जो इस धर्मयुद्ध में अपनी भूमिका निभा सकें। उनको संबोधित करते हुए पूज्य गुरुदेव अपना **पंद्रहवाँ सूत्र** देते हैं कि '**सज्जनों को संगठित करने, अनीति से लोहा लेने और नवसृजन की गतिविधियों में पूरी रुचि लेंगे।**'

सज्जन संगठित होंगे तो यह अनुभव कर सकेंगे कि वर्तमान समय के दो बड़े संकट बिखराव एवं विषमता हैं। इनको मात्र एकता और समता की प्रतिष्ठा द्वारा ही निरस्त किया जा सकता है। नवयुग में एकता और समता के सिद्धांत हर व्यक्ति को चाहे-अनचाहे अपनाने ही पड़ेंगे। शासन-समाज-प्रवाह-प्रचलन—ये सभी इसी के अनुरूप अपनी दिशा बदलने को विवश होंगे।

इसीलिए पूज्य गुरुदेव सत्संकल्प के **सोलहवें सूत्र** के रूप में लिखते हैं कि '**राष्ट्रीय एकता और समता के प्रति निष्ठावान रहेंगे। जाति, लिंग, भाषा, प्रांत, संप्रदाय आदि के कारण परस्पर कोई भेदभाव न बरतेंगे।**'

आने वाले विश्व समाज का एक ही धर्म—मानव धर्म होगा। वह आदर्शवादी व्यक्तित्वों और न्यायोचित निष्ठा पर अवलंबित होगा। आज के घने कुहासों में संभव है कि उसका अनुमान लगाना कठिन हो, परंतु एकता का सूर्य शीघ्र ही उगेगा और इन तमस् से भरी परिस्थितियों का सुनिश्चित अंत करेगा।

ऐसे समाज की रचना करने में वे ही सक्षम हो सकते हैं, जिन्हें यह विश्वास हो कि मन:स्थिति के बदलने से परिस्थिति में बदलाव संभव है। पुरुषार्थ एक नियम है और भाग्य अपवाद है। अपवादों का अस्तित्व है, पर उसे सत्य मानकर बैठने वाले अधिकतर निराशा के अँधेरों में जा गिरते हैं।

जो अध्यात्म पथ के सच्चे पथिक होते हैं, वे पूज्य गुरुदेव के **सत्रहवें सूत्र** को अपने जीवन-पथ का ध्येय वाक्य मानकर चलते हैं कि '**मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता आप है, इस विश्वास के आधार पर हमारी मान्यता है कि हम उत्कृष्ट बनेंगे और दूसरों को श्रेष्ठ बनाएँगे तो युग अवश्य बदलेगा।**' बिना स्वयं के बदले कोई बदलाव कैसे संभव है ?

पूज्य गुरुदेव के कहे का इतना ही अर्थ है कि संसार को हम जितना अच्छा बनाना और देखना चाहते हैं, उसकी अपेक्षा स्वयं को ऊँचा बनाने का आदर्श स्थापित करना होगा, उत्कृष्टता ही श्रेष्ठता का आधार निर्धारित करती है।

युग-परिवर्तन की सुनिश्चितता इस सत्य पर निर्भर है कि जब सदाशयता से संपन्न और संकल्प से युक्त व्यक्ति एकजुट होकर कार्य करते हैं तो परिस्थितियाँ अवश्य बदलती हैं और इसीलिए युग निर्माण की इस महान योजना की पहली एवं महत्त्वपूर्ण कड़ी हम स्वयं हैं। समाज व्यक्तियों के समूह का नाम है और व्यक्ति जैसे होंगे, वैसा ही समाज बनता चला जाएगा। इसीलिए युग-परिवर्तन का उद्घोष हमें अपने आत्मनिर्माण के शंखनाद से ही करना होगा। जैसा विश्व हम चाहते हैं, उसके अनुरूप व्यक्तित्व को बनाने का साहस हमें दिखाना होगा। इसीलिए युग निर्माण सत्संकल्प का आखिरी सूत्र सही अर्थों में उसकी आधारशिला वाला सूत्र है, जिसमें पूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि '**हम बदलेंगे-युग बदलेगा, हम सुधरेंगे-युग सुधरेगा—इस तथ्य पर हमारा परिपूर्ण विश्वास है।**'

यह सत्संकल्प नवसृजन का शंखनाद है, नवनिर्माण की आधारशिला है और नवयुग का संविधान है। इसे अपनाने की, आत्मसात् करने की आवश्यकता आज की सर्वोपरि आवश्यकता है। विद्यालयों की प्रार्थनाओं में, विभागीय गोष्ठियों में गायत्री परिजनों की दैनंदिन दिनचर्या में, उनके सोशल मीडिया से लेकर घर के दरवाजों पर, हर जगह इस सत्संकल्प की उपस्थिति ही यह सुनिश्चित करेगी कि उस महान परिवर्तन की रणभेरी बज चुकी है, जिसके लिए पूज्य गुरुदेव ने इन सूत्रों का सृजन किया था। ❑

मनुष्य जीव में देवरूप में कौन विद्यमान है—संत शाड़ोधर से जिज्ञासु ने प्रश्न किया। संत बोले—जीभ और हृदय। और असुर रूप में—उसका अगला प्रश्न था।

संत ने पुनः वही उत्तर दिया—जीभ और हृदय। सो कैसे—आश्चर्यमिश्रित स्वर में उसने पूछा।

संत बोले—संस्कारित वाणी और मर्यादित आचरण, जीभ व हृदय के शुद्ध व पवित्र होने से ही संभव है। वही जीभ व हृदय यदि कलुषित हो जाए तो वाणी, असभ्य व आचरण, अमर्यादित हो जाता है। परिष्कार उन्हें देवता बना देता है तो पतन असुर।

जिज्ञासु को जीवन की दिशा मिल गई।

गुरु कार्य में रहे समर्पित

यह जीवन तो सद्गुरु के, कर-कमलों का उपहार है।
गुरु कार्य में रहे समर्पित, शिष्य वही भव पार है॥

संस्कृति की गौरव-गरिमा है, नारी का सम्मान जहाँ।
दहेज-भिक्षा उन्मूलन हित, चले प्रखर अभियान यहाँ॥
कन्याएँ हैं शक्तिस्वरूपा, शास्त्रों का उच्चार है।
गुरु कार्य में रहे समर्पित, शिष्य वही भव पार है॥

वेदमंत्र गुँजित हों नभ में, शुभ विवाह संस्कार करें।
प्रदर्शन और अपव्यय का, दृढ़तापूर्वक बहिष्कार करें॥
धारा के प्रतिकूल चले, वह ही तो मत्स्यावतार है।
गुरु कार्य में रहे समर्पित, शिष्य वही भव पार है॥

शोर मचाना ज्योति बुझाना, सनातनी यह रीति नहीं।
संस्कृति के सूत्रों को धारें, है ऋषियों की नीति यही॥
देव संस्कृति का प्रतीक, हम सबको अंगीकार है।
गुरु कार्य में रहे समर्पित, शिष्य वही भव पार है॥

युवा शक्ति को दुश्चिंतन, दुर्भावना नहीं जकड़ पाए।
सभ्य समर्थ स्वदेश बनाने, संकल्पों पर अड़ पाए॥
युवा जगे तब देश जगे, यह युगऋषि का उद्गार है।
गुरु कार्य में रहे समर्पित, शिष्य वही भव पार है॥

ज्ञानयज्ञ अभियान मिशन के, हर परिजन का अंग बने।
सद्गुरु ने चाहा है वैसा, अंतरंग बहिरंग बने॥
कथनी-करनी भिन्न जहाँ, वह धर्म नहीं व्यापार है।
गुरु कार्य में रहे समर्पित, शिष्य वही भव पार है॥

चलें लोकहित के पथ पर, आगे ही बढ़ते जाएँ।
दिग्दर्शन व शक्ति गुरु की, शिष्य सभी हर पल पाएँ॥
बाधाओं के बंधन टूटें, बने विश्व परिवार है।
गुरु कार्य में रहे समर्पित, शिष्य वही भव पार है॥

— चक्रेश पाण्डेय

युगव्यास वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

के

समग्र वाङ्मय का क्रमिक परिचय

खंड – 7

प्रसुप्ति से जाग्रति की ओर

साधना–संयम, उपासना और भविष्य–निर्माण की आराधना, इन तीन पक्षों पर टिका हुआ है जाग्रति का विज्ञान। इसमें व्यक्तित्त्व को परिष्कृत कर ऊर्ध्वगमन की प्रक्रिया योगत्रयी द्वारा संपन्न की जा सकती है । इस खंड में साधना के इन महत्त्वपूर्ण सूत्रों का विवेचन है ।

- प्राण–प्रत्यावर्तन एवं कल्प–साधना ।
- अतिफलदायी चांद्रायण–साधना ।
- अध्यात्म–उपचार की प्रक्रिया ।
- कल्प–साधना का वैज्ञानिक आधार ।
- स्वरयोग से दिव्यज्ञान ।
- प्रत्यक्ष फलदायिनी साधनाएँ।
- उपासना का अभीष्ट वातावरण।

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01 / 06 / 2025
Regd. No. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
No. : Agra/WPP - 08/2024-2026

प्रतिकुलपति देव संस्कृति विश्वविद्यालय द्वारा आस्ट्रेलिया का सघन मंथन,
परिजनों से संपर्क, भावी योजनाओं का निर्धारण एवं परिजनों की भूमिका संबंधी मार्गदर्शन

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक–मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 **मोबाइल** — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039

ई-मेल–akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org